स्वर्ग एक तलघर है

आम आदमी का दुर्भाग्य केवल यह है कि वह धर्म के सार को छोड़ कर उसके फ़ॉर्म को, रूप को, पकड़ लेता है। आम आदमी स्वभावतः लीक पर चलने वाला होता है। धर्म के उपरी रूप को अपनाना—यज्ञोपवीत पहनना, चोटी रखना, मन्दिर जाना, पूजा-प्रार्थना करना, व्रत-उपवास रखना, गंगा-स्नान करके अपने पाप धोना और सोचना कि स्वर्ग में जगह सुरक्षित हो गयी है—उसके लिए सहज है। धर्म के सार को पकड़ कर अपने जीवन में उतारना चूँकि कठिन होता है, इसलिए वह सरल मार्ग चुन लेता है।

आम लोगों की इसी कमज़ोरी का लाभ धर्माचार्यों और सियासतदानों ने ख़ूब उठाया है। स्वर्ग का लालच दिखा कर दुनिया भर में उन्होंने अपने अनुयायियों को अन्य धर्मावलम्बियों के ख़िलाफ़ भड़का कर इतना रक्तपात कराया है कि इतिहास के पन्ने ख़ून से काले पड़ गये हैं।

दिलचस्प बात यह है—इस बात को मानने के बावजूद कि वह अपरिमेय सत्ता (उसे भगवान कह लें या ख़ुदा) सब जगह विद्यमान है और घर में बैठ कर भी उसका ध्यान किया जा सकता है, विभिन्न धर्मों ने दूसरों से अपने आपको विलग करने के लिए अलग-अलग पूजा-स्थल बना कर उस असीम को सीमा में बाँध रखा है। भगवान को गाली दे दो, उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना—मनुष्य—की हत्या कर दो तो किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगती, लेकिन आदमी द्वारा बनाये गये इन पूजा-स्थलों की ज़रा-सी बेहुर्मती ख़ून की नदियाँ बहा सकती है।

मैंने शास्त्र भी पढ़े हैं, कुरान भी, गीता और ग्रन्थ साहब भी। मैं ज़िन्दगी भर बहुत परेशान रहा हूँ। कुछ प्रश्न मुझे जीवन भर सताते रहे हैं। कुछ प्रश्नों के समाधान मुझे मिले और सन्तुष्ट कर गये हैं। सामाजिक और धार्मिक—दोनों छोरों पर मैंने उनको अपने जीवन में उतार कर देखा है और सही पाया है। इसलिए मैंने अपने इस कथा-काव्य में उन्हें पाठकों के सामने पेश कर दिया है।

(भूमिका से)

स्वर्ग

एक

तलघर

है

उपेन्द्रनाथ अश्क



नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

SWARG EK TALGHAR HAI
Narrative poem by Shri Upendra Nath Ashk

प्रथम सस्करण १९९१

आवरण अशोक भौमिक

मूल्य सजिल्द ५० 00
पेपरबैक · २० 00

प्रकाशक · नीलाभ प्रकाशन,
५ खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद
टाइप सेटिंग · निओ सॉफ़्टवेयर कन्सलटैंट्स
९०७, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद
मुद्रक · स्टार प्रिण्टर्स
२८७, दरियाबाद, इलाहाबाद

जब वो हम सब में है, हम उसमें हैं, तब आप कहो
किस को पूजे कोई, किस से कोई मन्नत माँगे।

१

मैं अस्सी वर्ष का होने जा रहा हूँ, जब मेरी दसवीं काव्य-कृति पाठकों के हाथो में पहुँच रही है। ऐसे में सहज ही मेरी नजर अपने विगत कवि-जीवन पर जाती है। यह जान कर मुझे हैरत भी होती है और ख़ुशी भी कि मैं पिछले ७० वर्षों से निरन्तर कविता करता चला आ रहा हूँ। गिरिजाकुमार माथुर ने शायद ठीक ही लिखा था कि साहित्यकार के नाते मेरे विभिन्न रूपों में मेरा कवि-रूप ही सबसे पुराना है।

मुझे आज भी अच्छी तरह याद है कि मैं चौथी या पाँचवीं में पढ़ता था, जब मैंने तुकबन्दी शुरू कर दी थी। भजन लिखने लगा था। आठवीं में था, जब 'शनावर'[1] उपनाम से पजाबी में बैत कहने लगा। फिर गालिबन मैट्रिक में मैंने 'अश्क' तख़ल्लुस[2] अपना लिया, उस्ताद मुहम्मद अली 'आजर' जालन्धरी का शार्गिद बन कर 'दबिस्तान-ए दाग'[3] से जुड़ गया और दिन-रात गजलें कहने लगा।

लेकिन १६३६ में जब मेरी ज़िन्दगी मे एक भयकर ट्रैजिडी घटी और भावनाओं के तूफान ने मेरे दिल-दिमाग़ को ग्रस लिया, तब मैं हिन्दी मे लिखने लगा था। मुझे हिन्दी के छन्दों का कोई ज्ञान नहीं था और भावनाओं का रेला कुछ ऐसा मुँहजोर था कि अभिव्यक्ति के लिए रास्ता चाहता था। गजल की विधा ऐसे तूफान को समो पाने में अक्षम थी। उस समय उर्दू नज्म पर मेरा अधिकार होता तो मैं निश्चय ही अपने उस मानसिक उद्वेलन को नज़्मों में बाँधता चला जाता, लेकिन ग़ज़ल हो या नज़्म, उर्दू मे उस्ताद को दिखाना ज़रूरी था और 'आजर' साहब से तब तक कता-ताल्लुक हो चुका था। उनसे नाराज होने के बाद किसी उस्ताद की शरण में जाना मुझे प्रिय नहीं था।

यूँ, भावनाओ के उस तूफान को मैंने एक गज़ल में बाँधने की भी कोशिश की थी। उस गजल के कुछ शे'र आज भी मुझे याद हैं। शायद मैंने अपने किसी उपन्यास मे नायक के मुँह से कहलवाये भी हैं, लेकिन मुझे सन्तोष नहीं हुआ था। तब मैंने अपने एक कवि-मित्र से हिन्दी का एक छन्द सीख लिया, मात्राएँ गिननी सीख लीं और जब तक भावनाओं का वह तूफान मन्द नहीं पड गया, मैं लगातार कविताएँ—या उन्हे गीत कह लें—लिखता चला गया।

इसे मैं अपना सौभाग्य ही समझता हूँ कि मेरी पहली कविता ही कलकत्ता के प्रसिद्ध हिन्दी मासिक '*विशाल भारत*' में छप गयी। न केवल पत्रिका के सम्पादकों ने, बल्कि श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन और पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी जैसे दिग्गज हिन्दी कवियों ने उसकी प्रशंसा में पत्र लिखे। यही नहीं, उस सीरीज की तीसरी कविता '*विशाल भारत*' के मुख-पृष्ठ पर छपी। वे सब कविताएँ मेरे पहले कविता-संग्रह '*प्रात-प्रदीप*' में संकलित, प्रशसित और चर्चित हुईं।

यह १६३८ की बात है। तब से ले कर आज तक पिछली आधी सदी में कहानियाँ, एकांकी, नाटक, उपन्यास, संस्मरण, आदि, लिखते रहने के बावजूद मैं लगातार कविताएँ लिखता चला आ रहा हूँ। यह सम्भव है कि दूसरी विधाओं में से किसी एक में वर्षों तक मैंने कुछ भी न लिखा हो, लेकिन कविता मैं हमेशा करता रहा हूँ और '*स्वर्ग एक तलघर है*' मेरी दसवीं काव्य-पुस्तक है।

इन दस पुस्तकों में खण्ड-काव्य भी है, जिन में यह तीसरा है। एक मित्र ने मसौदे के रूप में इसे पढ़ते हुए कहा—'आपने तो एक लघु उपन्यास की थीम को काव्य का जामा पहना दिया।'

चूँकि लघु उपन्यास एक लम्बी कहानी का ही जरा-सा भिन्न रूप होता है, इसलिए शायद बिहार के एक आलोचक ने '*दीप जलेगा*' को भी प्रबन्ध-काव्य मान कर लिखा कि हिन्दी में आधुनिक प्रबन्ध-काव्य अश्क के '*दीप जलेगा*' से शुरु होते हैं। इस सिलसिले में दूसरे आधुनिक कवियों के ग्रन्थों का जिक्र करते हुए उन्होंने '*बरगद की बेटी*' तथा '*चाँदनी रात और अजगर*'—मेरे दो खण्ड-काव्यों का भी उल्लेख किया।

यदि '*दीप जलेगा*' प्रबन्ध-काव्य या कथा-काव्य है तो मैं कहना चाहूँगा कि वह पहला नहीं, दूसरा है। इससे पहले मैंने एक लम्बी पद्य-कथा '*नीम से*' के नाम से लिखी थी और इसी को मैं अपनी पहली लम्बी कविता या प्रबन्ध-कविता मानता हूँ और उस श्रृंखला में '*स्वर्ग एक तलघर है*' चाहे मेरा तीसरा खण्ड-काव्य है, लेकिन मेरी सातवीं पद्य-कथा है—'*नीम से,*' '*बरगद की बेटी,*' '*दीप जलेगा,*' '*चाँदनी रात और अजगर,*' '*दोनों दरवाजों के बीच,*' '*पीली चोंच वाली चिड़िया के नाम*' और अब यह—'*स्वर्ग एक तलघर है।*'

मसौदे को टाइप कराके मैंने इसे अपने युवा पंजाबी मित्र डॉ० राजेन्द्र टोकी को भेजा। उससे तीन-चार पत्रों का आदान-प्रदान हुआ। पहले ही पत्र में उस ने इस बात पर हैरत जाहिर की कि मैं जब लिखता हूँ, अपने इर्द-गिर्द के माहौल को ले कर सामाजिक काव्य ही लिखता हूँ। जबकि हिन्दी की परम्परा पौराणिक अथवा ऐतिहासिक काव्य लिखने की है। उसने यह भी लिखा कि उसकी व्यक्तिगत लाइब्रेरी में विगत वर्षों में छपे हुए १६ नये प्रबन्ध-काव्य हैं, जिनमें एक भी सामाजिक नहीं है। फिर यह भी कि यह खण्ड-काव्य एकदम सच्चा, खरा, यथार्थ और व्यक्तिगत लगता है। महसूस होता है, जैसे मैंने अपने जीवन का एक आत्मीय खण्ड कविता में चित्रित कर दिया हो। उसने लिखा कि शायद आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में यह भी अपनी तरह का पहला प्रयोग है।

मैं हिन्दी काव्य के इतिहास का अध्येता नहीं हूँ, लेकिन प्रसिद्ध रूसी कवि पुश्किन ने अपने काव्य '*यूजीन ओनेगिन*' में रोजमर्रा की जिन्दगी का एक व्यक्तिगत टुकड़ा काव्य में पिरो दिया है। बहुत पहले मैंने उसे पढ़ा था और मुझे वह बेहद पसन्द आया था। ऐन सम्भव है कि अर्द्ध-चेतन में पचास वर्ष पहले पढ़े उस काव्य का कोई प्रभाव अब भी शेष और कौन जाने प्रेरणा भी।

मैं समझता हूँ कि यह लेखक की रुचि और क्षमता पर निर्भर करता है कि वह अपने इर्द-गिर्द के सामाजिक जीवन अथवा अपने ही व्यक्तिगत जीवन से थीम उठाये और उसे सन्तोषप्रद रूप से काव्य में रख दे। जिस तरह मैंने अपनी कहानियों, नाटकों और उपन्यासों की वस्तु अपने इर्द-गिर्द के परिवेश से ली है, उसी तरह अपनी पद्य-कथाओं और खण्ड- काव्यों की वस्तु को भी अपने इर्द-गिर्द के जीवन से उठाया है।

'*स्वर्ग एक तलघर है*' का अन्तिम वर्शन यद्यपि मैंने आज अस्सी बरस की उम्र में लिखा है, लेकिन वास्तव में यह मेरी ५० वर्षों की सोच और अनुभूतियों का परिणाम है।

मैं अपने को इलीट[1] (*elite*) कवि नहीं मानता, न होना चाहता हूँ। मैं सहज कवि हूँ और सहज कविता करना पसन्द करता हूँ। जैसा कि मैंने पहले भी कहीं लिखा है, कविता मैं लिखता नहीं, कविता मुझ पर उतरती है। काव्य के सन्दर्भ में मेरे यहाँ 'बादल से बँधे आते हैं मजमूँ मेरे आगे' वाली कैफियत है। कई बार जब कविता मुझ पर उतरती है तो विभिन्न भाषाओं अथवा बोलचाल के ऐसे उपयुक्त शब्द मेरी कविताओं में आप-से-आप समा जाते हैं, जो शायद सोचने पर कभी न सूझ पाते।

मैं वास्तव में सहज कविता ही नहीं, सहज भाषा में भी विश्वास करता हूँ। मैं समझता हूँ कि कठिन भाषा में दुरूह विचार रखना कोई मुश्किल बात नहीं। आसान भाषा में गहरी बात कहना अपेक्षाकृत कठिन है।

मैं यह भी मानता हूँ कि कला का यह तकाज़ा है, कवि अपना मन्तव्य काव्य में दख़ल-अन्दाज़ी करते हुए सीधे और फूहड ढंग से कभी न व्यक्त करे। वह जो भी कहना चाहे, अपनी रचना के वातावरण, अपने पात्रों, उनके सम्वादों, उनके अन्तर या बाह्य द्वन्द्वों और घटनाओं के घात-प्रतिघात के माध्यम से सरल भाषा में कहे। भाषा के सन्दर्भ में प्रेमचन्द की उक्ति को (कि तुम शब्द कहीं से भी लो, ख़्याल यह रखो कि भाषा का प्रवाह और विचारों का क्रम न टूटे) मैं कविता में भी सही और प्रासंगिक मानता हूँ। मेरा काव्य यदि साधारण पाठकों के मन को नहीं छूता, उनके दिमाग को सोचने पर विवश नहीं करता, उनकी किसी समस्या की ओर इंगित नहीं करता और इन्सान के नाते अपने आप और अपने समाज को समझ कर उसे बेहतर बनाने की प्रेरणा उन्हें नहीं देता तो मैं वैसी दुरूह और इलीटिस्ट कविता करना अपने समय और शक्ति का अपव्यय मानता हूँ।

यही कारण है कि साहित्य की अन्य विधाओं में की जाने वाली अपनी रचनाओं की तरह, अपने काव्य की वस्तु को भी मैं अपने समाज और परिवेश से उठाता हूँ और सामने नजर आने वाली हकीकतों के अन्दर छिपी हकीकतों को उजागर करता हूँ। जिन समस्याओं को अपनी रचनाओं में लेता हूँ, उनके बारे में समाज को सोचने-समझने, अपने परिवेश की विसंगतियों को दूर करके सही जीवन जीने की तलकीन[2] करता हूँ। यह बात दीगर है कि ऐसा मैं कोरे रेटरिक (*rhetoric*) निपट लफ्फाज़ी[3]—के माध्यम से नहीं, कला के माध्यम ही से करता हूँ।

---

१. विशिष्ट अथवा सम्भ्रान्त वर्ग के लिए लिखने वाला कवि, २. नसीहत, उपदेश, ३. वाग्मिता

यही वजह है कि मैं अपनी रचनाओं की वस्तु और आधारभूत विचारों के लिए पुराणों और इतिहास की शरण न जा कर उन्हें अपने परिवेश और समाज से (जिसका फर्स्ट हैण्ड ज्ञान और अनुभव मुझे प्राप्त है) उठाता हूँ और अपनी अनुभूतियों के बल पर कलापूर्ण ढंग से उन्हें चित्रित करता हूँ।

मैं यह भी मानता हूँ कि इतिहास और पुराणों से थीम लेने या महज कल्पना से उसे बुनने की अपेक्षा समाज से थीम उठाना और अच्छी रचना करना अपेक्षाकृत कठिन है, क्योंकि उस सूरत में यदि रचनाकार को अपने परिवेश और समाज और उसके यथार्थ का गहरा अनुभव और ज्ञान नहीं है और वह उन हकीकतों को रचनाओं में पंक्तिबद्ध करने का साहस नहीं रखता तो उसकी रचना की त्रुटियाँ—झूठ, झोल या खोटापन—पुराणों या ऐतिहासिक रचनाओं की अपेक्षा तत्काल पाठक पकड़ लेता है। कल्पना से यदि सामाजिक रचनाओं में कुछ जोड़ा भी जाये तो उतना ही, जो समाज की यथार्थ स्थिति से दूर न चला जाये और जो काल्पनिक होता हुआ भी यथार्थ लगे। रचनाकार ऐसा तभी कर सकता है, जब वह समाज से विमुख अपने गजदन्ती मीनारों में बैठ कर काव्य की साधना न करे, वरन समाज के कन्धे-से-कन्धा भिड़ा कर उसे समझे, उसकी विसंगतियों को उभारे और कर सके तो उनके समाधान की ओर भी संकेत करे।

'*स्वर्ग एक तलघर है*' में न केवल मैंने भाषा सरलतम और बोलचाल की भाषा के *बिल्कुल करीब रखी है, बल्कि वस्तु को भी समाज से उठाने के अलावा अपने और भी* करीब आत्मीय जगत से उठाया है। प्रयोग की खातिर नहीं, बल्कि अपनी बात को सशक्त और प्रामाणिक ढंग से कहने के लिए!

मेरा ख्याल था कि काव्य मैंने इतनी सरल और सहज भाषा में लिखा है, अपनी बात मैंने *निहायत स्पष्ट ढंग से कही है और कथा के मर्म की ओर संकेत भी स्पष्ट रूप से* पात्रों के चरित्र-चित्रण और सम्वादों में ऐसे समो दिये हैं कि किसी पाठक को मेरा मन्तव्य समझने में कठिनाई नहीं होगी, लेकिन यह जान कर आश्चर्य हुआ कि मेरे कुछ साथियों को उसका मर्म समझ में नहीं आया।

यूँ तो अपने अनुभव से मैंने जाना है कि प्राय साथी-लेखकों और आलोचकों की अपेक्षा पाठक अक्सर रचना के मर्म पर आसानी से उँगली रख देते हैं। शायद इसलिए कि जब आलोचक या साथी-रचनाकार उसके छिद्र ढूँढने के लिए उसे पढ़ते हैं, पाठक रस पाने की गरज से उसके निकट जाते हैं और जाहिर है, *मर्म को छू भी लेते हैं।*

२

'*स्वर्ग एक तलघर है*' के दो छोर हैं। एक छोर पर आज के उत्तरोत्तर मूल्यहीन होते चले जाने वाले हमारे समाज के विघटित मूल्यों और बुनियादी नैतिक मूल्यों में द्वन्द्व है और दूसरे छोर पर धर्म के ऊपरी रूप यानी कर्म-काण्ड और सच्चे धर्म में अन्तर की ओर

संकेत किया गया है। थीम के ये दोनों तार शुरु से ले कर अन्त तक एक-दूसरे से गुँथे हुए साथ-साथ चलते हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि आहार, निद्रा, भय और मैथुन—ये पशुओं और मानवों में समान हैं। केवल धर्म है (और विज्ञान कहता है कि वह आदमी का विकसित दिमाग है) जो मानवों को पशुओं से विलग करता है। इसी विकसित दिमाग के कारण आदमी सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी कहलाता है। धर्म भी उसी विकसित दिमाग की देन है। रहा विज्ञान तो आदमी चाहे चाँद-सितारों पर पहुँच गया है, लेकिन उसकी पाशविक वृत्तियों—उसके काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहकार—में रच-मात्र भी अन्तर नहीं आया। गालिब ने कहा भी है—

बस कि दुश्वार है हर काम का आसाँ होना
आदमी को भी मुयस्सर नहीं इन्साँ होना

इन्सान के इतिहास में ऐसे युग आये हैं, जब किसी महान नेता के प्रभाव से आदमी की सद्वृत्तियाँ उभर आयी हैं और उसने अपने कर्तव्य, धर्म या इन्सानियत के लिए बड़ी-बड़ी कुर्बानियाँ दी हैं। फिर ऐसे दौर भी आये है, जब उसकी कुप्रवृत्तियाँ खुल खेली हैं, उसके नैतिक मूल्य विखण्डित हो गये हैं, धर्म को उसने अपने स्वार्थ-साधन के लिए इस्तेमाल किया है और वह इन्सान के बदले हैवान हो गया है।

दुर्भाग्य से हमारे यहाँ कुछ ऐसा ही युग आजकल चल रहा है। इसलिए प्रस्तुत खण्ड- काव्य में भयकर मूल्यहीनता और नैतिक मूल्यों मे, झूठे और सच्चे धर्म में द्वन्द्व है।

मैं यह मानता हूँ कि सारे धर्म यदि उस एक सत्ता ने बनाये होते, जिसे हम भगवान या ख़ुदा कहते हैं तो सब एक जैसे होते, लेकिन चूँकि ये अपने युग के समाज को सुधारने के लिए इन्सानों में कुछ ऊँची सोच और फिक्र रखने वालो ही ने बनाये हैं, इसलिए विभिन्न युगों और स्थितियों के कारण इन में इतनी भिन्नता है और कहीं-कहीं ऊपरी तौर पर मूल्यों का टकराव भी। लेकिन चूँकि इन्हे इन्सानों ने इन्सानों की बेहतरी के लिए बनाया है और इन्सान सारी दुनिया में ऊपरी तौर पर अलग दीखने के बावजूद बुनियादी तौर पर एक-से हैं, इसलिए सारे धर्मों के सार में एक-से नैतिक मूल्य हैं, जो बार-बार आदमी की स्वार्थपरता के कारण विखण्डित होने के बावजूद फिर-फिर प्रतिष्ठित होते हैं।

आम आदमी का दुर्भाग्य केवल यह है कि वह धर्म के सार को छोड कर उसके फॉर्म को, रूप को पकड लेता है। आम आदमी स्वभावत लीक पर चलने वाला होता है। धर्म के ऊपरी रूप को अपनाना—यज्ञोपवीत पहनना, चोटी रखना, मन्दिर जाना, पूजा-प्रार्थना करना, व्रत-उपवास रखना, गगा-स्नान करके अपने पाप धोना और सोचना कि स्वर्ग मे जगह सुरक्षित हो गयी है—उसके लिए सहज है। धर्म के सार को पकड कर अपने जीवन में उतारना चूँकि कठिन होता है, इसलिए वह सरल मार्ग चुन लेता है।

आम लोगों की इसी कमज़ोरी का लाभ धर्माचार्यों और सियासतदानों ने ख़ूब उठाया है। स्वर्ग का लालच दिखा कर दुनिया भर में उन्होंने अपने अनुयायियो को अन्य धर्मावलम्बियों के ख़िलाफ भड़का कर इतना ख़ूनपात कराया है कि इतिहास के पन्ने ख़ून से काले पड गये हैं।

दिलचस्प बात यह है कि—इस बात को मानने के बावजूद कि वह अपरिमेय सत्ता (उसे भगवान कह लें या ख़ुदा) सब जगह विद्यमान है और घर में बैठ कर भी उसका ध्यान किया जा सकता है, विभिन्न धर्मों ने दूसरों से अपने आपको विलग करने के लिए अलग-अलग पूजा-स्थल बना कर उस असीम को सीमा में बाँध रखा है। भगवान को गाली दे दो, उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना—मनुष्य—की हत्या कर दो तो किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगती, लेकिन आदमी द्वारा बनाये गये इन पूजा-स्थलों की ज़रा-सी बेहुर्मती ख़ून की नदियाँ बहा सकती है।

मुझे लड़कपन से ये प्रश्न सताते रहे हैं। अपनी ज़िन्दगी में जिन बातों को मैं अपने अनुभव से सही पाता हूँ, उन्हें ही अपने साहित्य में उतारता हूँ, इसलिए मेरे सारे साहित्य में मेरा भोगा और झेला, सोचा और समझा, किसी-न किसी रूप में आ गया है। इस खण्ड-काव्य में, सम्भव है, एक मुकम्मल जीवन-खण्ड जस-का-तस उतर आया हो। शायद इस कारण कि समाज और धर्म के बारे में मैंने जो सोचा और समझा है, इस जीवन-खण्ड के चित्रण से मैं उसे भली-भाँति पाठकों तक पहुँचा सकता हूँ।

मैंने शास्त्र भी पढ़े हैं, कुरान भी, गीता और ग्रन्थ साहब भी। मैं ज़िन्दगी भर बहुत परेशान रहा हूँ। कुछ प्रश्न मुझे जीवन भर सताते रहे हैं। कुछ प्रश्नों के समाधान मुझे मिले और सन्तुष्ट कर गये हैं। सामाजिक और धार्मिक—दोनों छोरों पर मैंने उनको अपने जीवन में उतार कर देखा है और सही पाया है। इसलिए मैंने अपने इस कथा-काव्य में उन्हें पाठकों के सामने पेश कर दिया है।

३

'*स्वर्ग एक तलघर है*' पुस्तक रूप में आने के पूर्व अपने प्रथम वर्शन—'*निन्नी मामा आते हैं*' के शीर्षक से इसी वर्ष आकाशवाणी, इलाहाबाद से नाट्य-रूपक के तौर पर प्रसारित हुआ, फिर बिहार के प्रसिद्ध दैनिक '*राँची एक्सप्रेस*' के रविवासरीय अंकों में धारावाहिक रूप से छपा है। इसका आरम्भिक मसौदा, जैसा कि मैं डॉ० टोकी के सिलसिले में उल्लेख कर चुका हूँ, मैंने उनके अलावा बिहार के आलोचक-मित्र श्री श्यामसुन्दर घोष को भेजा था।

घोष बाबू ने तो लिखा कि निन्नी मामा ज़रा भी पागल नहीं लगते। वे आज के साधारण लोगों की तरह धन बटोरने की कोशिश में तल्लीन दिखायी देते हैं और अपने परिवेश में प्रेमचन्द की कहानी '*कफ़न*' के घीसू और माधो की तरह सही और सामान्य लगते हैं। उनका जीजा, जो आज के ज़माने के साथ चल नहीं पाता और पुराने दक़ियानूसी मूल्यों के साथ चिपटा है, पागल दिखायी देता है।

टोकी ने यद्यपि काव्य को समझा और मेरे मन-लगती बात कही, पर निन्नी मामा के बारे में उसने भी कुछ ऐसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त की। उसने लिखा—

> 'जो बात इस रचना के सन्दर्भ में मुझे कहनी है (पता नहीं कितनी ठीक है) वह यह है कि यदि स्वयं आपने निन्नी मामा को पागल न लिखा होता

तथा थाना और आगरा के पागलखानों में उनके रह आने की बात न कही होती तो मैं कभी न मानता कि वे पागल हैं।'

चूँकि कुछ दूसरे पाठकों ने भी यही प्रतिक्रिया व्यक्त की है, इसलिए मैं दो शब्द निन्नी मामा की विक्षिप्तता के बारे में कहना चाहूँगा।

लोगों को यह भ्रम इसलिए हुआ है कि वे केवल उसी को पागल समझते है, जो कपड़े फाडे, बाज़ारों में नगा-उघाड़ा, दाढी बढाये, बकता-झकता, गलीज़ और गन्दा, आवारा घूमता दिखायी दे, जबकि पागलों की बहुत-सी किस्में होती है और मैंने लड़कपन से ले कर अब तक अपनी पूरी जिन्दगी में बहुत-से पागलों को करीब से देखा-परखा है और मैं पागलों के मनोविज्ञान को ख़ूब जानता हूँ।

निन्नी मामा स्किट्ज़ोफ़्रेनिक (schizophrenic) हैं। ऐसे पागलों का व्यक्तित्व खण्डित हो जाता है। कभी ये विक्षिप्त दीखते हैं, कभी बिल्कुल सामान्य और कभी इनके दोनों व्यक्तित्व एक साथ कार्यरत होते हैं। तब वे आप से सीधे ढग से बात करते हुए अचानक शून्य में किसी दूसरे से बात करने लगते हैं।

विक्षिप्तावस्था में उनके यहाँ सबसे प्रमुख बात यह होती है कि पागलपन से पहले उनकी जो प्रवृत्ति प्रमुख होती है, पागलपन में वह और भी बढ़ जाती है। जो लोग होशमन्दी में सफाई-पसन्द होते हैं, विक्षिप्तावस्था में उनकी सफाई की आदत सनक तक जा पहुँचती है: जो सफ़ाई-उफाई के उतने कायल नहीं होते, न रोज नहाते-धोते हैं, वे पागल होने पर और भी गन्दे और गलीज हो जाते है। पागल कवि (अपने नॉर्मल क्षणों में) बेहतर कवितायें करते हैं और गद्यकार और नाटककार अद्भुत कहानियाँ और नाटक सृजते हैं।

निन्नी मामा चूँकि लडकपन में ही घर से भाग गये थे। वर्षों बम्बई के तलघर (अण्डर वर्ल्ड) में रहे, इसलिए पागलपन में उनकी ऑंचे-पाँचे की प्रवृत्ति इन्तिहा तक पहुँच जाती है और उनका दिमाग हेरा-फेरी में ही लगा रहता है। फिर जब अधेड़ावस्था में आध्यात्मिकता की ओर पलटते हैं, तब चूँकि वे प्रबुद्ध नहीं हैं, इसलिए धर्म के ऊपरी रूप को पकड कर परम निष्ठा से उसी को मानते हुए सनक की हद तक, ऊपरी, तथाकथित 'पवित्र' जीवन जीने लगते हैं और चाहते हैं कि न केवल उनकी आत्मा दूसरे जीवन में बेहतर शरीर धारण करे, वरन सम्भव हो तो स्वर्ग भी प्राप्त करे।

निन्नी मामा तो पागल हैं। तमाम अनैतिक काम करते हुए भी क्षम्य हैं। लेकिन समाज में लाखों-लाख लोग दन्द-फन्द से, भ्रष्टाचार से, अनैतिक कामों से धन कमाते हैं—माफिया सरगना डाके डलवाते हैं, कत्ल करते हैं, साफ़ छूट जाते हैं, यहाँ तक कि हमारी धारा-सभाओं में पहुँच जाते हैं। नेता और धर्मगुरु अपनी सियासत में आम जनता की भावनाओं को भड़का कर भयानक दगों, युद्धों और कत्लो-गारतगरी का बाजार गर्म कर देते हैं। हिटलर जैसे तानाशाह सारे विश्व को युद्ध मे झोंक देते हैं। ये लोग कैसे क्षम्य हैं ? कैसे 'एबनॉर्मल' नहीं हैं ?

रहा स्वर्ग, तो जैसा मैंने ऊपर विस्तार से बताया है, उसकी ख़ातिर जितने गुनाह होते हैं, उन्हें देखते हुए वह स्वर्ग एक अण्डरवर्ल्ड जैसा दिखायी देता है।

४

स्वर्ग ही की तरह पुनर्जन्म भी आम हिन्दू के लिए जबरदस्त प्रलोभन रखता है। निन्नी मामा के यहाँ तो यह फिक्सेशन है। वे मौत से डरते हैं और आश्वस्त होना चाहते हैं कि मौत के बाद भी जिन्दा रहेंगे। लेकिन वैसी फिक्सेशन चाहे न हो, पुनर्जन्म को ले कर आम लोग परेशान रहते हैं और जैसे स्वर्ग जाने के लिए दुनिया-जहान के कर्म-कुकर्म करते हैं, उसी तरह मरने के बाद उनकी आत्मा किसी अच्छे शरीर में जाये, इसके लिए व्रत, नियम, उपवास, पूजा, अर्चना—कई तरह के अनुष्ठान करते हैं—यहाँ तक कि ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो दूसरे बेहतर जन्म के प्रलोभन में अच्छे-भले इस जन्म को नरक बना लेते हैं।

मौत का भय सभी धर्मों में है। क़ब्रें और समाधियाँ इसी बात का प्रमाण हैं कि आदमी मरना नहीं चाहता। मुसलमानों में मरने के बाद रूह आलम-ए-बरज़ख़ में चली जाती है। वहाँ हश्र के दिन तक निष्क्रिय पड़ी रहती है। हज़ारहा साल पहले क़यामत हुई थी। दुनिया फिर से बसी थी। तब से ले कर सख्यातीत रूहें, आलम-ए-बरज़ख़ में पहुँच कर, हश्र का इन्तज़ार कर रही हैं। जाने कितनी सदियों बाद क़यामत आयेगी, हश्र बरपा होगा, फिर सारी क़ब्रों के मुर्दे जिन्दा होंगे। हश्र के दिन ख़ुदा के सामने अपने नेक और बद का फ़ैसला सुनेंगे और जन्नत या जहन्नुम में जायेंगे।

आदमी कल्पना की लगामें कितनी भी ढीली क्यों न छोड़ दे, वह हश्र के दिन का तसव्वुर नहीं कर सकता। लेकिन चूँकि आदमी मरने के बाद फिर जीना चाहता है और जन्नत और जहन्नुम में उसे पूरा यक़ीन है, इसलिए लोग तर्क-सगत ढंग से सोचे बिना, आँखें बन्द किये, जन्नत पाने के लिए, जैसा कि मैंने कहा, न जाने कैसे कुकर्म करते हुए इस ज़िन्दगी को जहन्नुम बनाये रहते हैं। मज़हब के नाम पर निर्दोष लोगों की निर्मम हत्या ऐन सवाब (पुण्य) मानी जाती है। दिलचस्प बात यह है कि आदमी चींटी तो पैदा नहीं कर सकता, लेकिन जन्नत के लालच में ख़ुदा के नाम पर ख़ुदा के बन्दों को बे-दरेग़ी से क़त्ल कर सकता है।

मैंने जब से होश सँभाला है, मैं आत्मा, कर्म-फल, पुनर्जन्म और स्वर्ग—इन चारों के बारे में सोचता आ रहा हूँ। मुझे लगता है कि कर्म का सिद्धान्त तो ब्राह्मणों ने तब बनाया होगा, जब उन्होंने अपनी जय-यात्रा मे दूसरे प्रदेशों की जीत कर वहाँ के लोगों को दास बनाया होगा और उन पर विद्या-बुद्धि के दरवाज़े बन्द कर के उन्हें चौथे वर्ण में रखा होगा। शूद्र चिल्लायें नहीं, विरोध न करें, विद्रोह न करें, शूद्रों के रूप में अपने इस जन्म और दुर्वस्था को न केवल अपने पिछले जन्म के कर्मों का फल समझ कर सन्तोष करें, वरन अपने इस जीवन में अपने कर्म और कर्तव्य पूरी तरह निभायें ताकि मरने के बाद बेहतर जन्म पायें—इसी उद्देश्य से कर्म-फल और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों का आविष्कार किया गया होगा।

जिस प्रकार लाख सोचने पर भी हश्र के दिन का तसव्वुर नहीं किया जा सकता, उसी तरह आत्मा कैसे दूसरा शरीर धारण कर लेती है, इसकी कोई स्पष्ट कल्पना नहीं की जा सकती। शास्त्रों में कहीं इस प्रक्रिया का उल्लेख नहीं है। विवेकानन्द भी यही कहते

है—सब बता नहीं सकते आत्मा किस तरह दूसरे शरीर में प्रवेश करती है, पर इसे विश्वासी व्यक्तियों के मुँह से सुना है कि ऐसा होता है और काव्य में इसके उदाहरण भी मिलते हैं।

चूँकि मौत के बाद दूसरे जीवन और स्वर्ग की कल्पना बहुत ही सुखद कल्पना है, इसलिए आम लोग इसे नहीं छोड़ पाते।

इन सभी प्रश्नों पर लगातार सोचने के बाद मैं जिन परिणामों पर पहुँचा हूँ, जिन्हें मैंने अपने जीवन में उतार कर सही पाया है, उन्हें ही मैंने तर्क-सम्मत ढंग से अपने पाठकों के लिए त्रिलोकी नाथ के माध्यम से इस खण्ड-काव्य में रख दिया है। पाठक मेरी धारणाओं को मानें या न मानें, यह जरूरी नहीं। यदि वे इन पर तर्क-सम्मत ढंग से सोचेंगे तो मैं अपना यह श्रम निष्फल नहीं मानूँगा।

५

मैंने त्रिलोकी नाथ के जीवन की कई दिलचस्प और विलक्षण घटनाएँ छोड़ दी हैं, केवल वे ही ली हैं, जिनके माध्यम से मैं अपनी बात साफ ढंग से रख सकूँ। यूँ तो प्रकट रूप से यह कहानी त्रिलोकी नाथ की है। लेकिन चूँकि उनके ही माध्यम से मैंने अपनी सोच, समझ और अनुभूति को इस खण्ड-काव्य के माध्यम से पाठकों के सामने रखा है, इसलिए यह परोक्ष रूप से खुद मेरी ही कहानी है, जिसे मैंने किंचित कुछ छुपाते-छिपाते पाठकों के सामने रख दिया है।

६

अन्त में निष्कर्ष-स्वरूप अपनी बात कहने से पहले मैं [illegible] के पत्रों से कुछ पंक्तियाँ उद्धरित करना चाहूँगा कि ये न केवल एक प्रबुद्ध पाठक की प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं, बल्कि काव्य के मर्म पर भी उँगली रखती हैं। [illegible] ने लिखा —

> ......यह कृति एकदम मौलिक लगी है। पाठक इसे पढ़े बिना नहीं रह सकता। मैं नहीं जानता, त्रिलोकी नाथ के चरित्र में कितनी कल्पना है और कितनी यथार्थता मेरे निकट वे एक विलक्षण पात्र हैं। [illegible] के [illegible] भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति से ले कर आध्यात्मिक जगत् तक फैली पाखण्ड-प्रवृत्ति तक—सभी का यथार्थ चित्रण उनके माध्यम से हुआ है।
>
> ....आप चाहते तो त्रिलोकी नाथ के यथार्थ चरित्र में थोड़ा कल्पना का रंग भर कर उसे प्रतीक-पात्र बना सकते थे। पर आपने ऐसा नहीं किया। क्या केवल इसलिए कि आप यह स्पष्ट घोषित करना चाहते हैं—आज के उपभोक्तावादी समाज में नैतिक मूल्यों के लिए [illegible]

> सुख-सुविधा के साधन जुटाने की अन्धी दौड़ में दिन-रात लगे हैं, निन्नी मामा उनके बने-बनाये प्रतीक हैं? आपने केवल एक जगह इस बात का संकेत दिया है—
>
> जब हमाम में सब नंगे हों
> निन्नी मामा सही दिखेंगे
> मेरे जैसा, हो जिसको मूल्यों की चिन्ता
> सबको सहज दिखेगा पागल
>
> ....मैं तो वैसा आस्तिक नहीं हूँ, लेकिन आपने खण्ड-काव्य में सच्चे धर्म की जो तर्क-संगत व्याख्या की है, वह बिल्कुल सही और सटीक लगती है, दिल-दिमाग को छूती है और आपकी तरह सोचने पर विवश करती है। मैंने सच्चे धर्म की ऐसी व्याख्या पहले किसी आधुनिक हिन्दी काव्य में नहीं पढ़ी।

टोकी ने अपने पत्रों में (भले ही खण्ड-काव्य को एक से ज़्यादा बार पढ़ने के बाद ही) इसके मर्म पर उँगली रख दी है। संकेत रूप में तो चाहे उपर्युक्त चार काव्य-पंक्तियों में, मैंने अपने मन्तव्य की ओर संकेत कर दिया हो, पर खुले शब्दों में उसे कहीं व्यक्त नहीं किया। लेकिन नैतिक और अनैतिक मूल्यों तथा ऊपरी झूठे और आन्तरिक सच्चे धर्म के सन्दर्भ में नैतिक मूल्यों और सच्चे धर्म की ओर मेरा झुकाव सुधी पाठकों को शुरू से अन्त तक स्पष्ट रूप से दिखायी देगा।

कहना मैं यह भी चाहता हूँ कि निन्नी मामा में जो कुप्रवृत्तियाँ बीज-रूप में पहले मौजूद थीं, वे ही विक्षिप्तावस्था में बढ़ीं, इसी तरह हमारे भ्रष्ट समाज में स्वार्थ-परता, समय-साधकता, स्वजन-पालन, लोभ, लालच, घूसख़ोरी, आदि के जो मानव-सुलभ दुर्गुण दबे पड़े थे, वे ही आदर्शवादी और सिद्धान्तप्रिय नेताओं की अनुपस्थिति में खुल खेले हैं और हमारा समाज, जैसे भी हो सके, धन और सुविधाएँ जुटाने की पागल दौड़ में सरगर्दान है।

रही आध्यात्मिकता, तो निन्नी मामा की तरह जो लाखों-लाख लोग धर्म के ऊपरी रूप के साथ चिपके, भगवान को पाने और इस जन्म के बाद बेहतर जन्म लेने अथवा स्वर्ग में स्थान बनाने के लिए न जाने क्या-क्या जतन करते हैं—अपने-अपने पूजा-स्थलों में मस्तक नवाते और पूजा-प्रार्थना करते, पीरों-फकीरों और पहुँचे हुए साधुओं और बाबाओं के दर पर सजदे करते, पवित्र तालाबों और नदियों में नहाते, दूरस्थ तीर्थों की कठिन यात्राएँ करते और कठिनतर तपस्या और साधना में लीन रहते हैं—उन्हीं को सम्बोधित करते हुए पंजाब के सूफ़ी कवि साँई बुल्हेशाह कहते हैं—

> वड़ अन्दर वेक्खो केहड़ा ऐ,
> बाहर ख़लकत पई ढुँढेंदी ऐ

यानी अपने अन्तर में डूब कर उसे देखो, और पाओ। दुनिया तो पागल है जो उसे बाहर ढूँढ़ रही है।

मैंने भी प्रस्तुत खण्ड-काव्य में निन्नी मामा के माध्यम से, नैतिक मूल्यों को परे हटा

कर सुख-सुविधाएँ बटोरने की अन्धी दौड में लिप्त, आम लोगों की इसी दीवानगी के साथ-साथ जगत में लोगों के इसी पागलपन की ओर सकेत किया है।

'*स्वर्ग एक तलघर है*' में सॉई बुल्देशाह की उपर्युक्त काफी के साथ मैने अद्वैतवाद पर स्वामी विवेकानन्द के एक भाषण से छै पक्तियाँ भी तर्क-स्वरूप रखी हैं। मैं आजकल '*गिरती दीवारें*' का सातवाँ और अन्तिम खण्ड लिख रहा हूँ। दमे की मेरी पुरानी बीमारी बहुत परेशान करती है और मैं बिस्तर पर पड जाता हूँ तो बीमारी के सख़्त दौरों के कारण रातों को जागते हुए कविताएँ करता हूँ या ग़ज़लें लिखता हूँ। एक रात ग़ज़ल के शे'र चुस्त करते हुए विवेकानन्द की उन छै पक्तियों का भाव आप-से-आप निम्नलिखित शे'र में उतर आया—

जब वो हम सब में है, हम उसमें हैं, तब आप कहो
किस को पूजे कोई, किससे कोई मन्नत माँगे।

मैंने ग़ज़ल डॉ० ज्ञान चन्द जैन को भेजी तो शे'र की प्रशसा करते हुए उन्होने यह भी लिखा कि शे'र का अन्दाज तसव्वुफ (अध्यात्म) का है, लेकिन तसव्वुफ आज की उर्दू शायरी में आऊट ऑफ डेट हो गया है।

मैं कहना चाहता हूँ—बिल्कुल उसी तरह, जैसे ऊँचे मूल्य और आदर्श आज के हमारे समाज में। ...लेकिन इन दोनो की अनुपस्थिति में आज व्यक्ति और समाज का चेहरा कितना विकृत हो गया है, यह भी किसी से छिपा नहीं।

मुझे पूरी आशा है कि सब नही तो मेरे कुछ पाठक जरूर इस के आईने में अपना और अपने समाज का चेहरा देखेंगे और हो सकता है, कोई यथा-शक्य उसे सँवारने की भी सोचे।

१५/११/६०

—उपेन्द्रनाथ अश्क

स्वर्ग एक तलघर है

१

निन्नी मामा आते हैं
रैक में लगी विवेकानन्द ग्रन्थावली से
एक खण्ड उठाते हैं
और सामने आड़ी बिछी मेज के पीछे
कुर्सी पर बैठ जाते हैं
किताब को मेज़ पर रख कर मस्तक नवाते हैं
घुटने मोड़ते हैं, पैर ऊपर उठाते हैं
और पुनर्जन्म के बारे में विवेकानन्द का भाषण
पढ़ने में तल्लीन हो जाते हैं

'जीजा जी, आपने यहाँ भी पेंसिल से
                निशान लगा रखे हैं !'
सहसा किताब पढ़ते-पढ़ते वे सिर उठाते हैं
'गीता में भी थे। महाभारत में भी। उपनिषदों में भी।
जीजा जी, आपने सभी शास्त्र पढ़ रक्खे हैं ?'

मैं काम करते-करते आँख उठाता हूँ
स्वीकार में ज़रा-सा सिर हिलाता हूँ

'पर आप कभी मन्दिर नहीं जाते
न पूजा करते हैं, न प्रार्थना
भगवान में आप विश्वास तो करते हैं न ?
नास्तिक तो नहीं हैं जीजा जी आप ?
पुनर्जन्म के बारे में आपका क्या ख़याल है ?'

२

निन्नी मामा मेरे नहीं
मेरे बच्चों के मामा हैं
जिन्दगी भर उन्होंने कोई ढंग का काम नहीं किया
गृहस्थी नहीं बसायी। कोई उत्तरदायित्व नहीं लिया
विलक्षण बुद्धि, अत्यन्त क्रियाशील मस्तिष्क
लेकिन सब ऑंचे-पाँचे के लिए।
सीधे-सच्चे काम को उन्होंने कभी हाथ नहीं लगाया
घण्टा-दो घण्टा जम कर दिमाग लगाना,
टिक कर बैठना, दयानतदारी से दो टके कमाना
उन्हें कभी रास नहीं आया।

मिट्टी से सोना बना सकते हैं।
बिना पैसा लगाये हजारों कमा सकते हैं।
सोलहो आने पागल हैं
        पर तुल जायें
        तो अच्छे-अच्छों को पागल बना आयें
अपने आपको खूब लगाने वालों को
        अनायास चूना लगा आयें।

३

निन्नी मामा मेरी ओर सिर उठाये हैं
मैं अपलक उन्हें देख रहा हूँ

मामा पैंसठ को पार कर आये हैं
उनके दाँत सारे-के-सारे वर्षों पहले
डेंटिस्ट की भेंट हो चुके हैं

बहन ने बहुत कीमती, नेचुरल शेड के
लगवा दिये थे
मामा पहले से सुन्दर लगते थे।

लेकिन रात को उन्हें उतार कर साफ करना
सहेज कर रखना, सुबह उन्हें फिर लगाना
मामा यह झंझट नहीं पाल सके
न जाने कहाँ, कब और कैसे वे खो गये
मामा उन्हें नहीं सँभाल सके
दन्त-विहीन उनका पोपला मुँह पिचक गया है। गालों पर
झुर्रियाँ उभर आयी है।

बाल छिदरे हो गये हैं
यद्यपि अब तक काले हैं।
माथा और भी चौड़ा हो गया है
नयन वैसे ही तेज, पर मतवाले हैं
केवल क्रोध में चमक उठते हैं। यूँ तो—
तूणीर में सोये तीर हैं
पलकों में खोये भाले हैं।

४

सारे धार्मिक ग्रन्थों में निन्नी मामा को
बस, एक प्रसग लुभाता है—
पुनर्जन्म !

वही उन्हें बार-बार उन ग्रन्थों तक लाता है
वही उन्हें बल देता है, मौत का भय दूर भगाता है
जिन्दगी की निरन्तरता में विश्वास बढाता है
वही उनके मन में प्रश्न उठाता है।

निन्नी मामा हरेक से यही प्रश्न करते हैं
मेरी अनुपस्थिति में मेरे टाइपिस्ट से
मेरे युवा सहयोगी से
मेरे मुलाकातियों, मित्रों से—

'पुनर्जन्म के बारे में आपका क्या ख्याल है ?
यह आत्मा बार-बार जन्म लेती है न ?
हम पहले भी थे। आगे भी रहेंगे न ?'

कोई 'हाँ' कह देता है तो मामा
प्रसन्न हो जाते हैं
अटपटे उच्चारण में गीता के श्लोक
दोहराते हैं

५

चौड़ा माथा, तेज आँखें, सुतवाँ नाक
पतली-छरहरी काया
लड़कपन में उठ गयी सिर से माता-पिता की छाया

धनी सगे-सम्बन्धी
अनाथ बच्चे—
ऊपरी प्यार में बारीक उपेक्षा का तार
तानों-तिश्नों का कसाला
भटक जाते। छोटे मामा ने सँभाला
मरणासन्न बहन को वचन दिया था
प्राण-पण से उसे पाला

बहन तो लड़की थी
सगाई हो चुकी थी। दुल्हन बनती
गहनों-कपड़ों से लदी ससुराल जाती
डिब्बी बाजार लाहौर के प्रसिद्ध सर्राफ की
बहू कहाती

माता-पिता के दिवंगत होते ही लेकिन
लड़के वालों ने तोड़ दी सगाई
सम्बन्धी सोचें किसी जरूरतमन्द को सौंप
उतार दें कन्धों से यह अनचाहा भार
पर लड़की, जैसे उपी हुई तलवार
छोटे मामा की सलाह से थाम लिया
चार वर्षों से छोड़ा पढ़ाई का तार

पाती गयी छात्र-वृत्ति
चढ़ती गयी शिक्षा के मन्दिर की सीढ़ियाँ
व्याप गया मन में साहित्य से प्यार

तब भूल कर वंश की प्रतिष्ठा
छोड़ कर जात-पाँत के बन्धन
तोड़ कर रिश्ते-नातों के तार
झेलती हुई रुस्वाई
ईस्टर की छुट्टियों में दिल्ली भाग आयी
नहीं सोचा - अच्छा होगा या बुरा
भलाई या बुराई

बुलाया पण्डित
चन्द मित्रों को बना कर साक्षी
बैठ गयी वेदी पर मेरी बायीं ओर
यज्ञ की अग्नि के सम्मुख
चेहरे पर हठात लालिमा उभर आयी।

निन्नी मामा लेकिन थे लड़के
फ़ितूरी दिमाग, कुसंगति, मलगई, बिगड़ गये
मैट्रिक पास किया, घर से ले कर दाखिले के रुपये
कॉलेज में प्रवेश पाने के लिए गये
ले कर छोटे भाई को साथ
जा पहुँचे सिंगापुर

बहन ने किसी तरह बुलाया
चाचा ने घग पर चढ़ाया
मकान का अपना हिस्सा उन्हीं के पास रख कर गिरवी
दोनों भाई जा पहुँचे बम्बई

नहीं मालूम – क्या खोया क्या पाया
इतना तय है कि ढेरों कमाये
जुए, शराब या रेस में
ढेरों गँवाये
अरमान किये सभी पूरे
रहे लँडूरे के लँडूरे।

न जाने क्या करते थे बम्बई की अण्डरवर्ल्ड में
कि पगला गये।

जा बैठे जुहू-तट पर बन कर शाहनवाज
एकदम नंग-धड़ंग
सागर में वुजू करें, तट पर पढ़ें नमाज

लोगों को गरियायें
श्रद्धालु सिद्ध मानें
अकीदतमन्द[1] सर नवायें
फल-मेवे, मिठाइयाँ चढ़ायें

मामा वह सब बच्चों में बाँट दें,
अकीदतमन्दों को गालियाँ दें
दूर भगायें
सट्टई परम प्रसन्न, उन्हीं गालियों से
शाम के सट्टे के नम्बर बनायें!

बहन को सूचना मिली
गयी बेचारी बम्बई
बहला-फुसला कर ठाणे के अस्पताल ले गयी!
मामा छै महीने वहाँ रहे
विद्युत-प्रघात सहे

---

१. श्रद्धालु

आठ बरस रहे आगरा
देखने जाता कोई-न-कोई हफ्ते-पखवाड़े
मँहगे इन्जेक्शन या दवाई
कपड़े-लत्ते या बहन का प्यार और मिठाई
पहुँचा आता।

मामा को लगती लेकिन भयानक गर्मी
कम्बल-लिहाफ़-गद्दे उठा देते
कपड़े-लत्ते बँटवा देते
सदा रहते नगे और उघाड़े!

महीने में एक बार मामा से मिलने की इजाजत थी।
बहन खुद आगरा जाती

सुपरिण्टेण्डेण्ट डॉ० लाल बहुत भले थे—
उनसे भाई का हाल सुनती
अपनी व्यथा सुनाती
बड़े प्यार से भाई को सामने बैठा कर
खाना खिलाती
चाय पिलाती

सिगरेट की मनाही थी-
दे न पाती
कंजूस, कैलस[1], क्रूअल[2]
न जाने कैसी-कैसी उपाधियाँ पाती
कुछ न कहती। खामोश रहती
हमेशा स ज ल-न य ना वापस आती

---

१. निर्मम २. क्रूर, जालिम

जब तक डॉ० लाल रहे। मामा का इलाज
आगरा में होता रहा
उनके दिवगत होते ही किसी ने
फिर मामा को नहीं सहा
डिस्चार्ज कर दिया।

तव से मामा इलाहावाद हैं।
मन की कैद में बन्द, तन से आजाद हैं।

६

इन तीस वर्षों का इतिहास
एक दफ़्तर सियाह हो जाय
मामा के चरित्र की वक्रता में
लेखनी खो जाय
तिस पर भी एक पक्ष पूरा
चित्रित न हो पाये
सम्बद्ध-असम्बद्ध कुछ चित्र
आँखों में आते हैं
मामा की भयकर निष्क्रियता और विलक्षण
सक्रियता, बेपनाह कजूसी
और बेकिनार फ़िज़ूलखर्ची का पता बताते हैं

सामने कुर्सी पर बैठे अधेड़ मामा
पुनर्जन्म के प्रश्न उठा रहे हैं
और उनके उस चेहरे पर उभरते
दूसरे चेहरे
एक अजीबो-गरीब जिन्दगी दिखा रहे हैं

...मामा आगरा से आते हैं
न पिछवाड़े लेटते हैं। न अपने कमरे में,
पोर्च में डाल कर झुलंगा
ओढ़ कर धूप में रजाई
पसर जाते हैं।

...मामा की मानसिकता खण्डित है
उन्हें काला सूरज दिखायी देता है
यमदूत उन्हें लेने आते हैं
कमरे के कोने में एकटक देखते हुए
न जाने वे किसको लगातार गरियाते हैं।

बहन भागी जाती है
'क्या बात है निन्नी ?'

मामा चौंकते हैं—'कुछ नहीं बहन जी !'

'निन्नी नाश्ता कर लो !'
मामा बदस्तूर कोने से मुखातिब हैं

'निन्नी तोस-दूध लोगे ?'
'ले लेंगे बहन जी !'

बहन नाश्ता ले कर आती है
मामा नाश्ता भी करते हैं
बहन की बातों के संगत उत्तर भी देते हैं
साथ ही कोने की अदृश्य आकृति को
लगातार गरियाते हैं

...मामा सोये होते हैं कि हठात
पड़ोस की दिवंगत बाला
रीटा
उनके पहलू से निकलती है
कमरे में घूमती हुई उसका निरीक्षण करती है
फिर उनके साथ आ कर लेट जाती है
कमरे में सफेद ऊर्जा का सागर लहराते लगता है
मामा चिल्लाते हुए उठते हैं
गेट के बाहर जा कर पुलिया पर लेट जाते हैं।

५ मिली ग्राम से १०० मिली ग्राम तक
मेलेरिल या लार्जेक्टिल
सौ नखरों से खाते हैं
तब कहीं जा कर मामा और घर वाले
सुकून पाते हैं

...परेशानी में अचानक डॉ० लाल का परामर्श
याद आता है

एक बार पहले मामा को घर ले आने की बात हुई थी
डॉ० लाल ने कहा था—-
'इन्हें ले जाइएगा तो किसी काम पर लगाइएगा
अपने से नहीं निकलेंगे तो लेटे रहेंगे
सोचेंगे, पगलायेंगे
सबको दीवाना बनायेंगे'

हठात मैं तय करता हूँ—बँगले में अनेक्सी बनवाऊँगा
मामा को उस बहाने
काम पर लगाऊँगा

...पत्नी से कहता हूँ। वह उन्हें समझाती है
जगह की तंगी का बहाना बनाती है
चीजों के भाव-ताव के सन्दर्भ में
मेरे अज्ञान का उल्लेख करती है।
उनको मदद के लिए उकसाती है
मामा मान जाते हैं
पत्नी उन्हें ले कर स्टडी में आती है।

...'निन्नी चीज बढ़िया लाओ।' मैं कहता हूँ
'सामान अनेक्सी में बढ़िया लगवाओ !
तुम्हीं रखो — भाव - ताव में जो बचाओ !'

'वाह जीजा जी, यह हुई न बात व्योहार की,'
मामा खिले चेहरे से कहते हैं —'बहन तो मेरे लिए
सब करती है।
पर बीड़ी-सिगरेट का जुगाड़ कर लूँ
तो क्या बुराई है ?
वह तो मेहनत की कमाई है।'

...एक-एक चीज के लिए मामा
सारा चौक खँगालते हैं।
अक्ल दंग रह जाय
ऐसी-ऐसी पर्चे निकालते हैं।

मोज़ेक के लिए प त्थर का दाना लेने जाते हैं।
लक्खी लाल की दुकान से दस बोरी दाना
लेते हैं। टाल पर जा तुलवाते हैं।
प्रत्येक बोरी में पाँच सेर दाना कम पाते हैं।
ट्रालियाँ वापस मु ड़ते हैं,
लक्खी लाल की दुकान पर वापस आते हैं
बोरियाँ उतरवा ते हैं
और वेतहा शा चिल्लाते हैं।

लक्खी लाल बेच ारा हैरान
कोई पत्थर का दाना भी तुलवाता है!

मामा वहीं से फ़ोन करते हैं,
'लक्खी लाल को दो,' मैं कहता हूँ
मामा दुकानदा र को फ़ोन देते हैं
'लक्खी लाल जी इनसे मत उलझिए,'
मैं कहता हूँ 'ये पागल हैं!'

'साहब आप भ ाग्यवान हैं, जिनको ऐसे पागल मिले हैं।'
वह कुछ खीज और व्यंग्य से कहता है।

मैं हँसता हूँ—
'आप रख लीजिए इन्हें, यदि सँभाल सकें।
फ़िलहाल इन्हें दाना दे दीजिए,
या माल वापस ले लीजिए!'

बेचारा लक्खी लाल एक बोरी दाना फालतू दे देता है।
मामा खुश-खुश वापस आते हैं
सारे, सुन्दाव द को अपनी कारगुज़ारी सुनाते हैं।

...अनेक्सी बनते - न - बनते मामा
शहर भर के मामा मशहूर हो जाते हैं।
सिंगापुर और बम्बई के रास्ते—
येन - केन - प्रकारेण पैसा कमाने की
मुहिम पर चल पड़ते हैं!
अनायास रुग्ण मानसिकता से दूर हो जाते हैं।

तब न उन्हें काला सूरज दिखायी देता है
न यमदूत सताते हैं।
न रीटा उनके पहलू से निकलती है
न वे पुलिया पर जा कर लेटते हैं
आठों पहर चाक-चौबन्द रहते हैं।
न मेलेरिल या लार्जैक्टिल के दंश सहते हैं।

...अनेक्सी बनवाने में मामा ने कुछ
पैसे बचा लिये हैं
देखता हूँ—मामा का लगभग अदृश्य रूप से
अपनी मुहिम चलाना
पहले घर की सब्जी - तरकारी
माँस-मछली लाना
दुकानदारों से सिगरेट - बीड़ी के रूप में
कमीशन पाना

...फिर मामा का चुपचाप पाँच पैसे वाले
सीसे के चौकोर सिक्के जमा करना
एक-एक दो-दो कर हफ़्तों-महीनों
उसी काम में लगे रहना
जाने कहाँ-कहाँ से चौकोर सिक्के लाना
खासी बड़ी थैली भरना
फिर सिक्का गलाने वालों के यहाँ जाना
सीसा गलवाना, बेचना
डेढ़ सौ रुपया मुनाफा कमाना।

...डाकखाने के किसी कर्मचारी की साझेदारी में
कुम्भ के अवसर पर ईंटें बिछाने का ठीका लेना।
भर सर्दियों में तड़के चार बजे उठ कर भट्टों पर जाना।
एक तिहाई अव्वल, दो तिहाई दोयम, सोयम
ईंटें ट्रकों में भर कर उन्हें सगम पहुँचाना।
अपने सामने विभिन्न डाकखानों के खेमों में
नीचे रेत पर ईंटें बिछवाना।
मिल-जुल कर बिल पास कराना
पन्द्रह सौ अपना लाभ कमाना।

....खुल्दाबाद के ठेले-वालों, सब्ज़ी-फरोशों को
सूद पर रुपया देना
पैसा बनाना सो बनाना, घाते में उनकी दुआएँ पाना।

...बाजार के एक ग्रैजुएट बनिये के यहाँ बैठना
धीरे-धीरे उसे चग पर चढ़ाना

...कहाँ दवा बिकती है सस्ती, कहाँ [illegible]
कहाँ झूठी, कहाँ [illegible]।
कहाँ अस्पतालों से ब्लैक में आती,
कहाँ दुकान से [illegible]
माना सब जानते हैं।
दूर से लेबल देख कर पहचानते हैं।

पटायें

...देखता हूँ - किसी छोटी-सी दवा पर बनिये ने [illegible]
उसकी दुकान के सामने, रिटायर्ड नर्स के [illegible]
[illegible]
जायें।
बनिये को गरियाना। ग्राहकों को बहकाना
बनिये की ठगी के किस्से ज़ोर-ज़ोर से सबको सुनाना।
तिल का ताड़ और राई का पहाड़ बनाना

मुहावरे की भाषा में — क़िस्सा कोताह यह —
बनिये के [illegible] की दुनिया की सारी [illegible]
सरे-बाज़ार लुटाना।

...[illegible] बनिये का घबराना
[illegible]। माफ़ी माँगना
[illegible] ले जाना।

वह सरकारी गोदामों से गेहूँ के ट्रक लेने आता है
मामा उससे मेल-जोल बढ़ाते हैं
उसके साथ सरकारी गोदाम जाते हैं
ट्रकों में गेहूँ लदवाते हैं
बातों-बातों में केमिस्ट के धन्धे के लाभ बताते हैं
अपने कौशल की लनतरानियाँ सुनाते हैं।

...बनिये के मिर्जापुरी सम्बन्धी का मन ललचाना
दूसरी या तीसरी बार आने पर
मामा के साथ मिल कर
मिर्जापुर के अपने बँगले में
केमिस्ट-शॉप खोलने की योजना बनाना।

.मामा का तत्काल सक्रिय होना
भाग-दौड़ कर दो ही दिन में
दुकान की सारी दवाएँ खरीदवाना।
एक क्षण भी न खोना
बनिये को अधर में लटकता छोड़ कर
मिर्जापुर चम्पत हो जाना।

...'मिर्जापुर जा रहा हूँ,' चलने से पहले मामा ने कहा था
'बहन मत घबराना।
चमका है निश्चय ही कोई अच्छा सितारा
पाँसा फेंका था, निकले पौ बारह।

'जीजा जी तो बेवकूफ है —
        कागज काले करते रहते है
न पेट भर खाते है, न नींद भर सोते है
        बेकार इतने कष्ट सहते है

इतना नाम है, इतना रुसूख है
        किसी अध्यापक, अफसर या मिनिस्टर को पटायें
पाँच-दस हजार खिलायें
        चार-छै लाख पेल कर बैठ जायें।

अब मै तुम्हें कमा कर दिखाता हूँ
        दिनों में पचास हजार लाख बनाता हूँ

अपना पैसा लगा कर कमाये तो क्या कमाये
मजा तो जब है,
        हर्र लगे न फिटकरी, रंग चोखा आये
मिर्जापुर से आऊँगा, खासा बैंक-बैलेंस लाऊँगा
        बताऊँगा, किस तरह होता है 'कमाना' !'

...मिर्जापुर के बँगले पर बर-लबे-सड़क
        एक कमरे पर मामा का कैमिस्ट-शॉप का बोर्ड लगवाना
टीक का बढ़िया फर्निचर, गोदरेज का फ़्रिज, काउण्टर,
        स्लाइडिंग शीशों वाले रैक बनवाना
नयी-से-नयी दवायें भरना
        मैनेजर की रिवॉल्विंग चेयर पर बैठ कर रौब जमाना

...लेकिन केमिस्ट शॉप तो महज़ मुखौटा है
पसे - पर्दा वहाँ
राहत कार्यों के लिए आये गेहूँ का ब्लैक होता है।
तथाकथित सड़कें या तालाब बनते हैं
जाली बिल, झूठी रसीदें, कागजी कार्रवाई मुकम्मल होती है
इन्स्पेक्टर आते हैं। शराब पीते हैं। मुर्ग-मुसल्लम खाते हैं
जेब गर्म करते हैं
सारे बिल पास कर जाते हैं।
एक तिहाई गेहूँ धरती-विहीन मजदूरों में बँटता है
शेष सारा ब्लैक में बिकता है।

...मामा उस तन्त्र के
अमोघ मन्त्र बन जाते हैं।
आँचे-पाँचे का सारा काम सँभाल लेते हैं
बदले में एकाध ट्रक गेहूँ पाते हैं।

...बँगले के पोर्च में
एक बोरी गेहूँ पड़ा है,
उठ कर उसे बरामदे में धरने के फ़िराक में
छिद्दन उसके पास खड़ा है

'गुप्ता से आया है या नखास-कोना की मण्डी से ?'
मैं पूछता हूँ।

'मामा छोड़ गये हैं घर के लिए।'
बहू कहती है !

'एक दाना भी घर में खर्च हुआ,' मैं चिल्लाता हूँ
'तो मुझसे बुरा कोई न होगा।
ग़रीब-गुरबा के मुँह से छीना दाना
इसे नौकरों में बाँट दो।
मामा फिर कभी गेहूँ लायें
उन्हें डाँट दो।'

...दूसरी बार बहू मना कर देती है। मामा फिर नहीं आते।
अपना बाकी सामान वहीं ले जाते हैं।
कभी खत नहीं लिखते। कभी याद नहीं करते।
उस जिन्दगी में पूरा सुख पाते हैं।

...बनिया दुकान उठाने की सोचता है—
उसी से पता चलता है।
मामा के बड़े रग हैं। उनके साथ ऐसे मिल गये हैं जैसे
उसी परिवार के अंग हैं।

....मामा वास्तव में उनके नौकर नहीं
(तथाकथित) सहयोगी बन जाते है
विलायती कपड़े का सूट,
शलवार-कमीज सिलवाते है
कभी सूट पर हैट पहनते है
कभी पठानों की तरह कुल्हे पर
तुर्रा लहराते है

दिल्ली, कलकत्ता हवाई यात्राएँ करते हैं
बड़े अफसरों से मिलते हैं
फ़र्राटे से अंग्रेज़ी बोलते हैं
बड़े पैमाने पर फ़ॉर्म भरते हैं
बेनामी लाइसेंस लेते हैं
अमरीकी गेहूँ मँगाते हैं
अपना हिस्सा पाते हैं
तीन वर्षों में पचास हज़ार बनाते हैं

...सुबह को बाहर से लौटता हूँ
दोपहर को खाना खाने के बाद
थोड़ा सुस्ताता हूँ।
शाम को काम में तल्लीन स्टडी में बैठा हूँ
अचानक कुछ याद आ जाने से उठता हूँ।
और तेज-तेज बँगले के बड़े खण्ड में जाता हूँ।
वहाँ खूब चहल-पहल है

डाइनिंग-हॉल में (जो हमारा ड्रॉइंग-रूम भी है)
छत से लटका एक हवाई जहाज
गोल दायरों में चक्कर लगाता हुआ
'घूँ घूँ' कर रहा है।
फर्श पर एक बड़ी-सी बस रेंगती चली जा रही है।
निकट ही एक छोटी-सी रेलगाड़ी
गोल दायरे में बिछी पट्टी पर चक्कर लगा रही है।
और मेरा सबसे छोटा पोता गोगी
कुदक्कड़े मारता हुआ कभी इधर आता है।
कभी उधर ! उसकी खुशी
तन में नहीं समा रही है।

'मामा !'
'मामा !'

'आप सोये हुए थे।' बड़ी बहू कहती है -
'मामा मिर्जापुर से वापस आ गये हैं।'

'हमेशा के लिए आ गये हैं ?' मैं पूछता हूँ।

'वहाँ डाका पड़ा है।' बहू कहती है।
'मामा जान-माल बचा कर भाग आये हैं
लगता है - खूब कमा कर लाये हैं।

'आते ही चौंक गये थे।
खिलौने, फल और मिठाई ले आये !
पन्द्रह सौ मुझे देंगे। पन्द्रह सौ छुटकी को !
उन्होंने ऐलान किया है।
आपसे पूछा नहीं था। हामी नहीं भरी,
एक-एक गिन्नी सबको देंगे। मम्मी तीन साल
मिर्जापुर राखी भेजती रही।
उनके लिए मामा ने
तीन गिन्नियों का प्रावधान किया है।'

'मामा के बड़े रंग हैं।' छोटी बहू कहती है–
'कमीज-शलवार, मुसद्दी साफा, कुल्हे पर
तुर्रा लहराये है।
विलायती कपड़े के सूट सिलवाये हैं,
दो बढ़िया सूटकेस साथ लाये हैं
बच्चों को सिनेमा
और हमें सिविल लाइन्स चाट खिलाने ले जायेंगे
नयी मार्केट में उमेशा की कुल्फी खिलायेंगे !
कपड़े भले ही कितने कीमती हों,' बहू हँसती है
'मामा के वही पागलों के ढंग हैं !'

मैं पत्नी के बारे में पूछता हूँ
मालूम होता है—भाई के लिए
कमरा ठीक करा रही है।
उसका सामान रखवा रही है।

•

'देखो, मामा इधर आयें,' मैं सख्ती से कहता हूँ
'उनसे कहना—सभी खिलौने जा कर वापस कर आयें
रुपये देना चाहें — कोई न ले। न बच्चे
उनके संग सिनेमा जायें
और न तुम सब जा कर चाट उड़ाना
तुम्हें सिविल लाइन्स जाना होगा। मुझसे पैसे लेना
चाट खाना, चाय पीना या बच्चों को सिनेमा दिखलाना।'

सुन कर मेरी डाँट
निकल कर पिछवाडे से
रोना-सा मुँह ले कर गोगी
दादी से जा कर कहता है —
'दादी, पापा सभी खिलौने वापस करने को कहते हैं।'

पत्नी भागी आती है, कितने ही प्रश्न लिये उत्सुक आँखों में
बात वही मैं और जोर से दोहराता हूँ
हल्की लगे न बात, और भी चिल्लाता हूँ।

पत्नी समझाती है मुझको बड़े धैर्य से -
'पास नहीं था जब पैसा निन्नी के
लेता था वह सदा आपसे।
और शगुन वह मुझको राखी पर देता था
सिगरेट-बीड़ी तक की खातिर,
पैसे वह हम से लेता था।

'अब भगवान-कृपा से उसका हाथ खुला है
बच्चे रहे प्यारे उसको
क्यों न उन्हें वह लाड लड़ाये
और न ले जाय बहुओं को चाट खिलाने
बच्चों को सिनेमा दिखलाये
नहीं भला क्यों ले जा सकता उन्हें घुमाने ?'

आँख उठा कर—
मैं एक नजर सब पर डालता हूँ
डाइनिंग-हॉल खामोश है। बहुएँ स्तब्ध हैं

पत्नी की आँखों में शिकायत है। गोगी चुप है
मुटर-मुटर वह सबको देख रहा है
हवाई जहाज की चाबी खत्म हो गयी है
मौन रूप से वह छत से लटका है।

मेरी बात किसी के पल्ले नहीं पड़ेगी
कहता हूँ मैं अपने मन में
उनके लेखे—निन्नी मामा ने
नहीं किया कुछ ऐसा,
जो सब जगह नहीं होता है
पड़ा अपावन ठौर, कौन है ऐसा
जो कंचन खोता है।

अरबों-खरबों राशि गरीबों के हित सत्ता देती
उन तक पहुँचे, इससे पहले—
धुर ऊपर से धुर नीचे तक जाने कितनी जेबें सेती
आपा—धापी, लूट-खसोट मची है चारों ओर हमारे
कहाँ गये वे मूल्य कि जो थे बचपन में हमको प्यारे
जिनके बल अँगरेजी-सत्ता से लड़ी लड़ाई
जिनके बल हमने आखिर आजादी पाई

सत्य, अहिंसा, नेकनीयती, दयानतदारी
स्वाभिमान की रक्षा करना !
स्वजनों की कीमत पर अपने फर्ज निभाना
झूठे धन - दौलत, इज्जत - शोहरत के लिए न मरना
दे कर प्राण सदा निजता की रक्षा करना।

आज होड़ है धन - दौलत, सत्ता - सुविधा की
हुई व्यवस्था भ्रष्ट, भ्रष्ट है नौकरशाही
प्रगति के ऐलानों में औ' वस्तु - स्थिति में
बढ़ती ही जाती है हर दिन गहरी खाई
पूँजीपतियों, औ' नेताओं, बिके हुए रचनाकारों की
धन-पशुओं, माफ़िया-गिरोहों, बेउसूल लोगों की
अब तो है बन आयी

अबलाएँ निर्दोष जलायी जाती हैं उन पुरुषों द्वारा
रहे नहीं जो पुरुष कहाने के अधिकारी
और जलायी जाती हैं झोपड़ियाँ धनहीन जनों की
सत्ता की है नहीं टूटती ज़रा खुमारी

टी० वी० पर नित सुन्दर चेहरा
बड़ी-बड़ी बातें करता है
बेबुनियाद हवाई सपनों से
जन की झोली भरता है
राम राज वह ही लायेगा
नित इसके दावे करता है

मूल्य-विहीन राष्ट्र कब कैसे सही तरक्की कर सकता है
बिना सही मूल्यों के जन की विपदा कैसे हर सकता है
हमें लड़कपन से बच्चों को सही मूल्य सिखलाने होंगे
गलत-सही औ' भले-बुरे के भेद सभी बतलाने होंगे

जब हमाम में सब नंगे हों
निन्नी मामा सही दिखेंगे
मेरे जैसा—हो जिसको मूल्यों की चिन्ता—
सबको सहज दिखेगा पागल ?

मैं चुपचाप चला जाता हूँ
छोटे बेटे के कमरे में
दिल का दर्द बताता हूँ मैं
उसको जा कर
मर्म बात का समझाता हूँ
उसको जा कर

'बेटे, निन्नी मामा तेरे
छोटे गोगी के लिए अचानक
बेहद मँहगे तीन खिलौने
ले आये हैं।
इतने मँहगे,
जो न पुत्र तुम ला सकते हो
जो न अभी मैं ला सकता हूँ
निन्नी मामा (पैसा उनके पास आ गया आज अचानक)
जैसा लाड़ लड़ाना चाहेंगे बच्चों को
तुम चाहोगे
न मैं चाहूँगा
और चलाना चाहेंगे जैसे इस घर को
तुम चाहोगे
न मैं चाहूँगा।
बे-दरेग़ है पैसा पैदा किया उन्होंने
(मेहनत का होता, निश्चय ही चिन्ता करते)
बे-दरेग़ वे नष्ट करेंगे।
आँचा-पाँचा करना बच्चों को सिखलायेंगे
ग़लत-सलत मूल्यों से उनके
मन-मस्तक को भ्रष्ट करेंगे

'हमने बच्चों को बेटे, थोड़ा सख़्ती से पाला है
मूल्य दिये हैं ऊँचे औ' नैतिकता सिखलायी है
पशुओं के समान नहीं जीते हैं मानव
कई तरह से बात उन्हें यह समझायी है

'मैंने तो बच्चा, जीवन भर
सदा जलाया ख़ून-पसीना
मैं तो ले कर मूल्य चला हूँ
नहीं मुझे भाया है पशु-वत जीना

'अब लेकिन आदर्श बनेंगे निन्नी मामा
क्या इस घर के?
कोई नैतिक मूल्य रहेगा नहीं यहाँ पर
सीखेंगे बच्चे धन जैसे-तैसे पैदा करना
ऐश उड़ाना
मौज मनाना

'अब तो बाबा, दादा हैं बच्चों के नायक
तब निन्नी मामा उनके आदर्श बनेंगे,
मामा तो कहते रहते हैं हमको मूरख
बच्चों को भी तब हम बुद्धि-विहीन लगेंगे!'

झुका हुआ टेबल पर बेटा, अपना कुछ लिखने में रत था
कलम रोक कर, शीश झुकाये
सुनता रहा। अचानक सिर न्योढ़ाये
बोला—
'रोका नहीं आपने?'

'होगा नहीं, खर्च यह पैसा अपने घर में,'
बेटा बोला, 'पापा जायें, मत घबरायें

'मैं जा कर कहता हूँ — वे ले जायें
सभी खिलौने, बाँटें या लौटायें।

'बहुत शौक है, जायँ बम्बई
छोटे भाई और भतीजों पर जा कर ही
खर्च करें जब जितना चाहें
हमको बख़्शें उनको जा कर ऐश करायें

'यह धन जैसे आया है, वैसे जायेगा
इसे बराबर कर लें मामा, तब आ जायें,'

'यह तो है स्वीकार मुझे, पर मेरे बेटे,
मेरे घर के नियम तोड़, यह उसे चलाये
यह मुझको स्वीकार नहीं है।'

...खट से परे हटा कर कुर्सी
बेटा उठता है
तेज - तेज चल देता है
सोने के कमरे से हो कर
खाने के कमरे को

मौन रूप से बाहर के दरवाजे से मैं
आ जाता हूँ-नये खण्ड के
अपने लिखने के कमरे में

'मुझसे पूछा नहीं किसी ने ?'
जाहिर है कुछ उपालम्भ था मेरे स्वर में
'मामा हैं बेटे, है उनका सीधा नाता
मेहनत और दयानत से वे अगर कमा कर लाते
बच्चों या बहुओं की खातिर कुछ ले आते
मैं न रोकता।

'यह पैसा जो वे लाये हैं, गुरबा के मुँह से छीना है
इसके बल पर ऐश उड़ाना रक्त ग़रीबों का पीना है
लेकिन तेरी माँ को मैं कैसे समझाऊँ ?

'भाई उसका इतने वर्ष रहा है उस पर निर्भर
अब वह खूब कमा लाया है
मँहगे सही खिलौने यदि वह ले आया है
कैसे कहे कि उनको मोड़े
नहीं चाहती बहन कि भाई का दिल तोड़े

'दागी है यह धन उसको कैसे समझाऊँ
मैं कुछ कहूँ—नहीं यह उसको जरा सुहाता
गुड्डू लेकिन, यह धन हमको नहीं पुसाता।

'तुम बेटे हो उसके, गोगी पुत्र तुम्हारा
तुम यह बात कहोगे, वह जरूर समझेगी
बहस करेगी मुझसे, तुमसे नहीं करेगी
तेरा तो वह मान जायेगी जरा इशारा
'जहर-भरा यह बीज इसे मत अँखुआने दो।
मीठा अपना जहर इसे मत फैलाने दो।'

'होगा नहीं, खर्च यह पैसा अपने घर में,'
बेटा बोला, 'पापा जायें, मत घबरायें

'मैं जा कर कहता हूँ — वे ले जायें
सभी खिलौने, बाँटें या लौटायें।

'बहुत शौक है, जायँ बम्बई
छोटे भाई और भतीजों पर जा कर ही
खर्च करें जब जितना चाहें
हमको बख़्शें उनको जा कर ऐश करायें

'यह धन जैसे आया है, वैसे जायेगा
इसे बराबर कर लें मामा, तब आ जायें,'

'यह तो है स्वीकार मुझे, पर मेरे बेटे,
मेरे घर के नियम तोड़, यह उसे चलाये
यह मुझको स्वीकार नहीं है।'

...खट से परे हटा कर कुर्सी
बेटा उठता है
तेज - तेज चल देता है
सोने के कमरे से हो कर
खाने के कमरे को

मौन रूप से बाहर के दरवाजे से मैं
आ जाता हूँ-नये खण्ड के
अपने लिखने के कमरे में

क्या घटता है वहाँ और होता है कैसा गर्जन-तर्जन
नहीं जानता
क्या कहता है, बेटा माँ को या मामा को, कैसे
गोगी को बहलाता है—
नहीं जानता

उस प्रसग से अपने मन का राग
हटा लेता हूँ
छोड़ गया था काम बीच जो, मन को बरबस
उसमें पुनः लगा लेता हूँ

रात गये पत्नी आती है, लिये गिले-शिकवे आँखों में
देख मुझे तल्लीन काम में, पास मेज़ के
बिछे तख्त पर
बैठ प्रतीक्षा करती है—
मैं आँख उठाऊँ

पूरा करके वाक्य घुमा कर कुर्सी
होता हूँ सुनने को उत्सुक
अपने मन की बात कहे, तब
अपने मन की व्यथा सुनाऊँ

'आप बड़े क्रूअल हैं।' पत्नी धीरे से कहती है —
'पत्थर-दिल हैं। सम्वेदन ने
छुआ नहीं है ज़रा आपको !
बड़े मनोवेत्ता बनते हैं, बड़े कहाते हैं कवि-लेखक
ज़रा समझते नहीं भावनाएँ दूजों की

'मन्त्र पढ़ाया क्या जा कर गुड्डे को,
आ कर उसने वह उत्पात मचाया
नहीं लिहाज किया माँ का, मामा का,
बोला, बमका औ' चिल्लाया
नोच लिया उड़ता जहाज, फिर
नादिरशाही हुक्म सुनाया
'पैक खिलौने करो !
उठाओ !
बाँटो या लौटाओ !'

'बोला मुझसे—कह दो मामा से, बिन मुझसे पूछे
मेरे बच्चों की खातिर कोई चीज न लायें
उन्हें न पैसे दें, न उन्हें सिनेमा दिखलायें
चाट खिलायें !'

'कान पकड गोगी का उसको साथ ले गया।
जाने उसको क्या समझाया।
बच्चा सहमा-सहमा आया
खाना खाये बिन जा सोया।
कुआ[१] नहीं, मगर आँखें हैं
बतलाती वह कितना रोया।

'रुठा निन्नी अलग पडा है
कमरे में मुँह के बल लेटा।
नहीं उसे मालूम, नही क्यों
घर वालों ने उसको सेटा।

---

१. चूँ नहीं की (रोजमर्रा का मुहावरा है)

'कौन गाज गिरती यदि गुड्डा
सहज भाव से कहता—मामा
एक खिलौना रख लेता हूँ
वड़े प्यार से तुम लाये हो
लेकिन वाकी लौटा आना
और कभी फिर इतने मँहगे
नहीं खिलौने अव तुम लाना

'मामा है, क्या ज़रा नहीं दिल उसका
उससे रक्खा जाता
मेरे छोटे भाई से क्या नहीं ज़रा भी
उसका नाता ?'

'एक खिलौना रख लेगा वह, मैं समझा दूँगा,
लेकिन....'

औ' लेकिन के वाद बहुत धीरे से
वड़े धैर्य से
ज़रा न ऊँचे स्वर में
मैंने पत्नी से वह सब कहा
कि जो था वेटे से कह आया
स्थिति का तर्क बताया उसको
उसको दिल का मर्म दिखाया

वहुत देर तक वातें होती रहीं, हुआ तय आखिर
मामा रहें शौक से जैसे रहते थे वे पहले
उनके पास वहुत है पैसा खर्च करें अपने पर
या मित्रों पर या फिर उस पर
जो है उनका छोटा भाई
उसके वच्चों पर खर्च करें,
दें जिसको जितना चाहें।

लेकिन देंगे नहीं कभी बच्चों-बहुओं को
किसी सुदिन पर
पाँच-सात से ज़्यादा
और न लायेंगे उससे ज़्यादा की
घर में कभी मिठाई
या फिर कोशिश करें, लगायें
भले काम में बुरी कमाई !'

इसी मरहले पर पत्नी ने कहा —
'सुनिए, निन्नी है मेरा भाई
क्या वह शगुन नहीं मुझको दे सकता ?
तीन गिन्नियाँ राखी के बदले वह देने को कहता है
बेच दिये थे मैंने अपने कड़े,
चाहता है — उनको बनवा दे
और नये दो सूट चाहता है
मुझ को सिलवा दे

'लेकिन झझट
तीन खिलौनों पर जब इतना
किया आपने
कहूँ उसे क्या, कैसे मैं इनकार करूँ
अब देता नहीं सुझाई'

'बात तुम्हें समझा दी है,' मैं बोला, 'अब जो चाहो
ले सकती हो उससे वह सब जो भी तुमको देना चाहे
याद रखो पर —
पागल है, जब तक धन अपना सारा
करता नहीं बराबर,
चैन नहीं उसको आयेगा

तब फिर कौन करेगा उसकी सेवा,
कौन इलाज करेगा उसका
सो, वह जो दे तुम चाहे ले लो,
इस्तेमाल करो मत उसको
दुर्दिन में जब होगी इसकी उसे जरूरत
उसका यह धन उसकी सेवा में जायेगा।'

मैंने जा कर बातें बेटे को समझा दीं
एक खिलौना रख लिया गया
बहन को
तीन गिन्नियाँ मामा ने दे दीं
चूड़ियों-ऐसे दो बड़े कड़े
सोने के
बनवा दिये।
एक-एक गिन्नी बच्चों-बहुओं को देने की भी मैंने अनुमति दे दी

लेकिन मामा नहीं रुके।
पहले तो खुश दीखे।
फिर एक सुबह वे टिकट कटा कर
सीट सुरक्षित करके
ले कर दोनों सूटकेस वे
बिना नमस्ते किये
चले गये बम्बई

सुख की लम्बी साँस
हृदय से सबके निकली

७

'जीजा जी, आपने मेरी बात का जवाब नहीं दिया ?'

मैं चौंकता हूँ—

मामा बदस्तूर कुर्सी पर बैठे है
उनकी निगाहें मुझ पर टिकी है

उन्हें विश्वास है — मैं, जिसने इतने शास्त्र पढ़े है,
जो भी उत्तर दूँगा
वह सटीक होगा

और मेरी आँखों में उनका जीवन
सिनेमा की रील-सरीखा।
उस क्षणांश में घूम गया है।

'मैं तुम्हें क्या जवाब दूँ निन्नी,' मैं कहता हूँ।
'मैं लगातार यह सोच रहा हूँ।'

'आप पुनर्जन्म को नहीं मानते ?'
मामा अविश्वास से कहते है।
और फिर मुझ पर आँखें टिका देते है।

मेरी आँखों में फिर उनकी विगत जिन्दगी के
चित्र आने लगते है।

८

...पचास हजार से पचास लाख बनाने के फिराक में
छोटे भाई को साथ मिला कर
(छोटा भाई - मद्यप और प्रतिभाशाली सिने-निर्देशक का
वैसा ही मद्यप और प्रतिभाशाली साथी
बेहद तेज, बेहद मेहनती, बेहद कैलस
सिने-जगत के तन्त्र का अचूक मन्त्र
दोष बीसियों। गुण केवल एक—
अपने बीवी-बच्चों पर जान छिड़कने वाला
सारी दुनिया को टिच समझने पर भी
अपने बीवी-बच्चों की खातिर कट मरने वाला)

छोटे भाई को साथ मिला कर मामा ने
काफी रुपये रेस में फूँके
मंसूबे अनगिनत बनाये
बेहिसाब पैसे मटके में डाले
ज़्यादा गये। बहुत कम आये।

. .सोच - सोच कर मामा ने योजना बनायी
मटके ही से कैसे कुछ की जाय कमाई

जूता मटके वालों का सिर उनके मारें
चतुराई से उनके कपड़े सभी उतारें
याद रखें वे, ऐसा चूना उन्हें लगायें
इन्द्रजाल मटके का तोड़ें। घाते में कुछ
नामा पायें
नाम कमायें

सौ की सख्या में से किसी दिहाई पर यदि टके लगायें
मटके में नम्बर आ जाये
नब्बे गुना टके पा जायें
और लगायें अगर इकाई पर हम पैसे
नम्बर आने पर
नौ गुना भुनायें

मामा ने तय किया—
नम्बर आठ पर लगायेंगे।
(न्यूमेरोलॉजिस्ट ने उन्हें बताया था —
उनके लिए यह शुभ नम्बर है।)

हर रोज पैसा दुगना करते जायेंगे
जिस दिन नम्बर निकलेगा,
पिछला सारा वसूल होगा
लाभ ऊपर से कमायेंगे
पुनः शुरू से शुरू करेंगे
आखिर को दीवाला मटके वालों का
बीच शहर निकलवायेंगे

एक से शुरू करके मामा
ग्यारह दिन तक नम्बर आठ पर रुपये लगाते रहे
हर रोज पैसा दुगना बढ़ाते रहे
ग्यारहवें दिन १०४० लगाये
बारहवें दिन २०८० लगाने थे
मामा ऊब गये
उन्होंने नम्बर ५ पर ३०० लगाये
उसी दिन नम्बर ८ आ गया
मामा ने सिर पीट लिया

...फिर मटके का चक्कर छोड मामा ने
स्टड के एक घोड़वान को साधा
घोड़ों की किस्मों का, उनकी नस्लों का, उनके अतीत का
अध्ययन किया। पैसा लगाया
एक बार आया। दस बार गँवाया

...फिर एक जॉकी के दर पर सजदे किये
उसने कुछ जीतने वाले घोड़ों के नाम दिये

लेकिन घोड़ों के मालिक थे
बड़े जुआरी लगभग सारे
वे देते आदेश जॉकियों को
अपने हित में ?
मामा कभी नहीं जीते। वे सब दिन हारे !

...फिर मामा ने एक ज्योतिषी को जा घेरा
देते रहे तीसरे-चौथे उसके दर का फेरा

मिठाई-फल पहुँचाये
ज्योतिषी ने नम्बर बताये
एक-दो बार आये
मामा ने जीतने के बाद सोत्साह
दुगने लगाये
हमेशा गँवाये

इस दौरान भाई-भतीजे
मुर्ग-मुसल्लम खाते रहे
बियर, ह्विस्की, कोनियाक के साथ
भुना हुआ पिस्ता और काजू
उड़ाते रहे

...किस्सा कोताह यह कि तीन ही बरस में मामा ने
पचास हज़ार बराबर कर दिये
और चारपाई पर पड़ गये

उन्हें फिर काला सूरज दिखायी देने लगा।
यमदूत डराने लगे।

छोटे भाई में कहाँ इतना धैर्य
कि बकौल अपने 'मस्तकमारी'[१] करे
प्यार से उन्हें दवा खिलाये
उनके अहं को सहलाये
ऊपर से उनकी गालियाँ खाये
उसने बहन को चिट्ठी लिखी
और बड़े बेटे के साथ उन्हें
इलाहाबाद भेज दिया।

...तब से मामा हमारे पास है
कल खुश थे
आज उदास हैं

कल क्या मूड होगा
कोई ठिकाना नहीं।
बम्बई जाने की धमकी रोज देते हैं
लेकिन बम्बई उन्हें जाना नहीं

जो कुछ उनके पास था
वह कब का उड़ा चुके
आगे काम करने की
योजनाएँ बना चुके
मिर्जापुर हो आये,
सभी हथकण्डे अपना चुके
उनके शुभ नक्षत्र,
कभी के आ कर जा चुके

---

१. माथा पच्ची

अब धान में दाना नहीं
बिन दाने बम्बई में उसका स्वागत होगा
वैसा ज़माना नहीं।

वहाँ बड़ी बहन है।
उसके तमाम नाज़-नखरे सह लेती है
गालियों का रस भी प्यार देती है

वहाँ छोटा भाई
मनमानी
जिस पर भारी है

सो बम्बई जाने की धमकी को
उसे असली जामा
पहनाना नहीं।

परेशान तो करते हैं
परेशान तो होना है

पैसे के साथ यहाँ रहते
और परेशान करते
परिवार को उनके प्रभाव से बचाने के लिए
बहुत जोर पड़ जाता।

अब जो हुआ है
पहले से मालूम था
अपने कर्तव्य से कन्नी काटूँ
कोई तो बहाना नहीं।

बरबस बम्बई भेज सकता हूँ।
पर छोटे की निर्ममता से परिचित हूँ
फिर जुहू-तट का शाहनवाज तो
इन्हें बनाना नहीं।

इधर जब उम्र हुई पैंसठ के पार
मामा पर हो गया पूरी तरह
अध्यात्म सवार

मीट - मछली
बियर - ह्विस्की
तज दी।
छोड़ दिये सूट-बूट
कमीज-शलवार।
पहन लिया धोती-कुर्ता
गले में रुद्राक्ष की माला
मौसमी फूलों के हार

घर में खड़ाऊँ, बाहर चप्पल फटफटाते हैं
मामा रोज गंगा-स्नान को जाते हैं
अर्घ्य देते हैं, पूजा करते हैं, चन्दन घिसते हैं
तिलक लगाते हैं

दिन-त्योहार पर गंगा-स्नान कर नारियल चढ़ाते हैं
परम सन्तुष्ट भाव से वापस आते हैं
नारियल तोड़ते हैं, बच्चों को प्रसाद बाँट कर
सुख पाते हैं
तन्मय भाव से गीता के श्लोक गुनगुनाते हैं

व्रत-उपवास, नित्य नियम,
चींटी पर पाँव रखने से डरते हैं
कभी-कभी मुझ पातकी को दया-भाव से देखते हैं
भगवान से मेरी सद्बुद्धि के लिए दुआ करते हैं।

...मामा बाकायदा दवा लेते हैं
तो प्रायः प्रवचन देते हैं
मुस्कराते हुए स्टडी में आते हैं
कोई ग्रन्थ उठाने से पहले
बैठते हुए बतियाते हैं

'जीजा जी, आप मौत से डरते हैं ?'
वे प्रश्न करते हैं !

'कौन नहीं डरता निन्नी,' मैं कहता हूँ
'मौत से सभी डरते हैं।'

'मैं !' वे उठ कर सीने पर हाथ मारते हैं।
'मौत तो तरी है जीजा जी,' मामा कहते हैं
भवसागर से पार ले जाती है
मौत ही पुराना चोला उतारती है
नया पहनाती है।

'और जीवन—
समझिए जंक्शन स्टेशन

'हम एक गाड़ी छोड़ कर आते हैं
कुछ पल ठहरते, नहाते, खाते, सुस्ताते हैं
फिर दूसरी गाड़ी में बैठ कर चले जाते हैं।'

वे निहायत अटपटे स्वर में गीता के श्लोक उछालते हैं
पंजाबी हथौड़े से संस्कृत के कूबड़ निकालते हैं —
'वासांसी जीरनानी जथा विहाय
नवानी गृहनानी नरो परानी

'गीता में लिखा है — जीजा जी
मौत ही खस्ता-बोसीदा[१] जीवन के बदले
नया जीवन देती है
मौत की मदद से आत्मा
पुराना घिसा हुआ चोला छोड़ती है
एकदम नया-नकोर लेती है।

'मैं मौत से नहीं डरता हूँ
बस यही प्रार्थना करता हूँ
प्राण गंगा-किनारे जायें
अपने सारे पाप गंगा में बहा कर
साफ़ स्लेट ले कर परलोक जायें !'

....लेकिन जिन दिनों मामा
दवा नहीं खाते हैं
उनके सारे भय उभर आते हैं

१. जीर्ण-जर्जर

जरा-सी फुंसी निकल आये—
उन्हें कैंसर हो जाता है
जरा-सी साँस फूले—दमा
हल्का-सा सीने में दर्द—हार्ट अटैक।
करने लगते हैं सबसे अलैक-सलैक।

एकदम लेट जाते हैं—
'मैं चला, मैं चला'—की धुन लगाते हैं।

जो भी उन्हें देखने जाता है
उसके पाँव छूते हैं
विदा माँगते हैं
भूल - चूक बख्शवाते हैं
सोना मुहाल कर देते हैं
इतनी हाय - तौबा मचाते हैं।

सहने की हद हो जाती है तो मैं लम्बी साँस भरता हूँ।
पत्नी को सुना कर
उनकी चारपाई के पास जा कर,
ऐलान करता हूँ—

'ये दवा नहीं लेंगे
तो फिर आगरा जायेंगे।'

मौत से डरें-न-डरें, मामा
आगरा जाने से बहुत डरते हैं

वहाँ चाय नहीं,
मामा दिन भर चाय पीते हैं
वहाँ बीड़ी नहीं,
मामा अव्वल नम्बर के चेन-स्मोकर हैं
(तामसिक चीजों में यह अभी उनके साथ लगी है)
लगता है भोजन पर नहीं, मामा
बीड़ी पर जीते हैं।

सबसे बढ़ कर यह कि वहाँ गंगा नहीं
वे कैसे अपने पाप वहाँ बहायेंगे?
कैसे साफ स्लेट ले कर परलोक जायेंगे?

मामा तत्काल उठ बैठते हैं
अपने कमरे में चले जाते हैं
कई दिन तक किसी से नहीं बोलते
किसी दूसरे की आवाज पर किवाड़ नहीं खोलते

सिर्फ़ बहन जाती है
वही उन्हें खाना या दवा खिलाती है

१०० मिलीग्राम लार्जेक्टिल खाते हैं
तो चौथे-पाँचवें दिन सहज हो जाते हैं
मुस्कराते हुए मेरी स्टडी में आते हैं

'कहिए जीजा जी, कैसी तबियत है?'

'ठीक हूँ निन्नी, तुम कहो।'

'मैं तो तारा भी नहीं हूँ प्रभु जी
तारा भी नहीं मैं प्रभु जी
कैसे टिमटिमाऊँ। लाऊँ
रोशनी कहाँ से लाऊँ
तारा भी नहीं हूँ प्रभु जी

'मैं तो हूँ जुगनू बेचारा प्रभु जी
जुगनू बेचारा प्रभु जी
तेरा ही सहारा प्रभु जी
तेरा ही सहारा। मैं तो
जुगनू बेचारा प्रभु जी
जुगनू बेचारा
मैं तो जुगनू बेचारा
प्रभु जी ....'

...दीन-दुनिया से बेख़बर मामा
चारपाई पर बैठे, घुटनों को बाँधे
झूमे और गाये जाते हैं
सन्नाटा भंग होता रहता है
मेरा आँखों में उतरती नींद
लौट जाती है।

मैं झल्ला कर उठता हूँ
पत्नी की चारपाई के पास जाता हूँ
(थकी-हारी वह टेबल-फ़ैन के आगे विसुध सोई है
क्रोध में सब कुछ भूल जाता हूँ।)
और जोर-जोर से चिल्लाता हूँ

'उठ कर इन्हें लार्जेक्टिल या मेलेरिल दो
कि जुगनू बेचारा सोये
और हमें भी सोने दे
ये खुद तो पच्चासी वर्ष तक गंगा में नहायेंगे
पर लगता है मुझको बहुत पहले
गंगा में बहायेंगे।'

९

मामा मुँह उठाये मेरे उत्तर की प्रतीक्षा में बैठे हैं
और मैं उनके विगत जीवन की चित्रावलि में खो गया हूँ

अन्तिम दृश्य पर पहुँच कर
अपने क्रोध और अपनी खीझ पर
पत्नी की बेबसी और मामा के जुगनूपन पर
हँसी आ जाती है।

मैं मामा की ओर देखता हूँ—सोचता हूँ
मामा को क्या जवाब दूँ ?

मामा जानना चाहते हैं—मैं मन्दिर नहीं जाता
गंगा नहीं नहाता
पूजा नहीं करता ! न प्रार्थना करता हूँ।
मैं आस्तिक हूँ या नास्तिक ?

मेरे पिता कभी मन्दिर नहीं जाते थे
पर पिता तो व्यसनी थे और
मज़हब-वज़हब में उनका कोई विश्वास नहीं था।
मेरी माँ धर्म-परायणा थी। पुण्यात्मा थी।
वह भी कभी मन्दिर नहीं जाती थी।

मुहल्ले की औरतों के गुरु थे
वे आते थे।
मुहल्ले में हमारा सबसे अच्छा मकान था।
पड़ोसी उन्हें हमारी बैठक में टिकाते थे।
वे संकीर्तन करते थे। सारा मुहल्ला इकट्ठा होता था
हम बच्चे उनकी टहल-सेवा करते थे।

लेकिन मेरी माँ कभी ऊपर से नहीं उतरती थी।
कहा करती थी—'बेटे भगवान तो सर्वव्यापी है।
वह तो सृष्टि के कण-कण में बसा है
मूर्ख हैं जो उसे दीवारों में कैद करते हैं
और गुरुओं की शरण जाते हैं
वह तो हमारे अन्दर है।
जब चाहो और जहाँ चाहो
उसे ध्याओ !'

मैं उन्यासी वर्ष जी आया हूँ।
देश-विदेश घूम आया हूँ
शास्त्र भी मैंने सब पढ़े हैं
मुझे लगता है - मेरी माँ ठीक कहती थी।

और मेरे पिता गाया करते थे—
भूल कर दुनिया के सब छल - छन्द
दूर - दूर तक दिशाओं को गुँजार्ता
लोच और सोज-भरी अपनी खनखनाती आवाज में —
साईं बुल्हेशाह की काफी के दो बन्द

'मुँह आयी बात न रहन्दी ए
जब-जब कर जिह्वा कहन्दी ए
इह तिलकन-बाजी वेहड़ा ए
हनेरे दे विच हनेरा ए
वड़ अन्दर वेखो केहड़ा ए
बाहर खफतन पई ढुँढेंदी ए
मुँह आई बात न रहन्दी ए।[1]
शौह, बुल्ला असाँतीं वक्ख नहीं
बिन शौह दे दूजा कक्ख नही
पर वेखन वाली अक्ख नहीं
ताईं जान जुदाइयाँ सहन्दी ए
मुँह आई बात न रहन्दी ए[2]'

---

१. होंटों पर आयी बात (कि मैं खुदा हूँ) दिल में नहीं रहती और ज़बान रुक रुक कर कह देती है। यह संसार फिसलने आँगन ऐसा है। यहाँ अँधेरे के अन्दर अँधेरा छाया है (तू बाहर खुदा को बेकार ढूँढता है) अन्दर (अन्तर में) झाँककर देख कि कौन है। पागल दुनिया बेकार उसे बाहर ढूँढ रही है।

२. बुल्हा कहता है कि शौह (हमारा महबूब, खुदा) हम से अलग नहीं (वह हमारे अन्दर है) उसके बिना दुनिया में एक तिनका तक नहीं (वह सब में है) पर उसे देखने वाली आँख सबके पास नहीं। तभी लोग उसकी जुदाई सहते हैं और उसे ढूँढने में परेशान रहते हैं।

मेरा इस काफी में भी पूरा विश्वास है

लेकिन मेरा कोई विश्वास नहीं—
ऐसे रिश्वतखोर भगवान में
जो हमसे पूजा की अपेक्षा रखता है
और हमारी प्रार्थनाएँ सुनता है
प्रसाद पाने से प्रसन्न होता है
और हमारे मन की मुरादें पूरी करता है
नास्तिकों और काफिरों को दण्ड देता है
और पवित्रात्माओं को स्वर्ग भेजता है

यह प्रकृति, मुझे लगता है—
इन्सान की नियति से एकदम उदासीन
अनेकानेक नियमों से बँधी है।
सूर्य उन नियमों को बदल नहीं सकता
न चाँद-सितारे, न अरबों-खरबों आकाश-गगाएँ
न पशु-पक्षी, न चरिन्द-परिन्द
यह केवल इन्सान है, जिसने युगों-युगों के संघर्ष से
अपने स्वरूप को बदला है और पशु से इन्सान बना है।

अगर भगवान ऐसी शक्ति है, जो सर्व-व्यापक है
तो उसे मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों, गुरुद्वारों में
कैसे कैद किया जा सकता है?

यदि वह सृष्टि के कण-कण में बसा है
तो मुझ में कैसे नहीं है।
मैं कैसे उसका अंश नहीं हूँ?

अचेतन नहीं, मैं उसका चेतन अंश हूँ।
मैं क्यों करूँ उसकी प्रार्थना ?
मैं क्यों उससे वर मागूँ ?
मैं क्यों न अपने को साधूँ ?
अपनी नियति का विधाता बनूँ ?

मेरा आत्मा में कोई विश्वास नहीं
मैं उस विवेक को मानता हूँ—उसे आत्मा कह लें
जो मुझे बुरे काम से रोकती है
और अच्छे की प्रेरणा देती है
उस आत्मा में मेरा कोई विश्वास नहीं
जो मौत के बाद ज़िन्दा रहती है

आत्मा भले ही अमर न रहे —
मैं सोचता हूँ —
न बदले दूसरे जन्म में नया चोला
अश्क यदि अगले जन्म में अश्क ही पैदा हो
और भी बड़ा साहित्यकार बन जाय
इस जन्म में उससे क्या फर्क पड़ेगा

मैंने तो नहीं चुनी यह छोटी-सी ज़िन्दगी
मैं सोचता हूँ —
मुझे मिली है यह माता-पिता की कृपा से
मैं इसे कैसे सँवारूँ, सुधारूँ, गुज़ारूँ
मेरी यही चिन्ता है—

मेरी आत्मा भले ही अगले जन्म में
नया चोला धारण न करे
पर इस जन्म में पग-पग पर मुझे टोके
जिन्दा रहे और न मरे।
मैं यही चाहता हूँ!

लेकिन निन्नी मामा को मैं यह सब नहीं बता सकता
पुनर्जन्म में उनके विश्वास को नहीं डिगा सकता
आस्था के जिस तार को वे पकड़े हैं
उसे धक्का नहीं लगा सकता

मेरी माँ कहती थी—'बेटे,
पेट तो कुत्ते और सुअर भी भरते हैं
और पैसा वेश्याओं के पास भी होता है।'

आज की शब्दावली में कह लें—
तस्करों, चोरों, लुटेरों, डाकुओं, हत्यारों
और भ्रष्टाचारियों के पास भी होता है

और महाकवि ने कहा—
ऐ तायर-ए-लाहूती,[१] उस रिज़्क़[२] से मौत अच्छी
जिस रिज़्क़ से आती हो परवाज[३] में कोताही[४]

१. लाहूत सूफ़ी दर्शन में उस स्थान को कहते हैं, जहाँ भक्त भगवान से एकमेक हो जाता है—यहाँ मतलब-ऐ ख़ुदाई पक्षी। ऐ ख़ुदा को पाने की शक्ति रखने वाले
२. रोज़ी-रोटी ३. उड़ान ४. कमी

लेकिन मैं निन्नी मामा को यह सब नहीं बताता
यह सब कतअन उनकी समझ में न आता
मैं उन्हें पुनर्जन्म के बारे में माँ का कथन सुनाता हूँ
और कहता हूँ -

'निन्नी, मैं उन्यासी वर्ष जी आया हूँ
और मैंने इस कथन को सही पाया है

अगला जन्म किसने देखा है
इस जन्म के कर्मों का फल इसी जन्म में मिलता है

प्रकृति मनुष्य से अपने विरुद्ध किये गये गुनाहों का
भयंकर बदला लेती है
उसे ही नहीं। उसकी सात-सात पीढ़ियों को
उसका फल देती है

आदमी अपने, अपने परिवार, पड़ोसियों, मित्रों
अपने समाज, देश और मानवता के विरुद्ध
किये गये गुनाहों का फल यहीं भोगता है

हाँ, वह जान नहीं पाता
यही उसका दुर्भाग्य है

वह भगवान से अपने गुनाह बख़्शवाता है
भगवान को उसके गुनाहों से सचमुच कोई सरोकार होता
तो वह उसे पाक और पवित्र बनाता
उसे ऐसी प्रकृति न देता, जिसे गुनाह अच्छे लगते हैं
और पुण्य बोर करते हैं

मेरी आत्मा भले ही अगले जन्म में
नया चोला धारण न करे
पर इस जन्म में पग-पग पर मुझे टोके
जिन्दा रहे और न मरे।
मैं यही चाहता हूँ!

लेकिन निन्नी मामा को मैं यह सब नहीं बता सकता
पुनर्जन्म में उनके विश्वास को नहीं डिगा सकता
आस्था के जिस तार को वे पकडे हैं
उसे धक्का नहीं लगा सकता

मेरी माँ कहती थी—'बेटे,
पेट तो कुत्ते और सुअर भी भरते हैं
और पैसा वेश्याओं के पास भी होता है।'

आज की शब्दावली में कह लें—
तस्करों, चोरों, लुटेरों, डाकुओं, हत्यारों
और भ्रष्टाचारियों के पास भी होता है

और महाकवि ने कहा—
ऐ तायर-ए-लाहूती,[1] उस रिज़्क[2] से मौत अच्छी
जिस रिज़्क से आती हो परवाज[3] में कोताही[4]

१. लाहूत सूफी दर्शन में उस स्थान को कहते हैं, जहाँ भक्त भगवान में एकमेक हो जाता है—यहाँ मतलब-ऐ स्वर्गीय पक्षी। ऐ मुक्त को पाने की शक्ति रखने वाले
२. रोज़ी-रोटी ३. उड़ान ४. कमी

लेकिन मैं निन्नी मामा को यह सब नहीं बताता
यह सब कतअन उनकी समझ में न आता
मैं उन्हें पुनर्जन्म के बारे में माँ का कथन सुनाता हूँ
और कहता हूँ -

'निन्नी, मैं उन्यासी वर्ष जी आया हूँ
और मैंने इस कथन को सही पाया है

अगला जन्म किसने देखा है
इस जन्म के कर्मों का फल इसी जन्म में मिलता है

प्रकृति मनुष्य से अपने विरुद्ध किये गये गुनाहों का
भयंकर बदला लेती है
उसे ही नहीं। उसकी सात-सात पीढ़ियों को
उसका फल देती है

आदमी अपने, अपने परिवार, पड़ोसियों, मित्रों
अपने समाज, देश और मानवता के विरुद्ध
किये गये गुनाहों का फल यहीं भोगता है

हाँ, वह जान नहीं पाता
यही उसका दुर्भाग्य है

वह भगवान से अपने गुनाह बख़्शवाता है
भगवान को उसके गुनाहों से सचमुच कोई सरोकार होता
तो वह उसे पाक और पवित्र बनाता
उसे ऐसी प्रकृति न देता, जिसे गुनाह अच्छे लगते हैं
और पुण्य बोर करते हैं

भगवान को नहीं निन्नी मामा
अपने को साधो

जो कर आये हो, उसे भूल जाओ
जो थोड़ा वक्त रह गया है,
उसे नेक कामों में लगाओ

यदि कोई स्वर्ग है तो वह तुम्हें मिलेगा
दूसरा जन्म है तो तुम जरूर पाओगे

इतना समझ लो
बाजरा बोओगे तो बाजरा काटोगे
गेहूँ बोओगे तो गेहूँ खाओगे।'

मामा फिर कोई प्रश्न नहीं करते
विवेकानन्द पढ़ने में तल्लीन हो जाते है।

१०

दूसरे दिन मैं किसी काम से स्कूटर पर
बहराना जाता हूँ।
रास्ते में पाता हूँ—
मामा संगम से नहा कर आ रहे हैं
बड़े मनोयोग से
चींटियों को आटा खिला रहे हैं
हैरत से देखता हूँ—
मामा ही नहीं
अनेकानेक दूसरे
जो पागल नहीं, पूरे होशमन्द हैं
हनुमान जी को चढ़ावा चढ़ा कर प्रसाद पा रहे हैं
चींटियों के बदले ब्राह्मणों को भोजन करा रहे हैं
मतलब यह कि अपने पाप गंगा में बहा कर
यूँ स्वर्ग में स्थान बना रहे हैं।

११

निन्नी मामा आते है
रैक में लगी ग्रन्थावली से
एक खण्ड उठाते है
मेरे सामने आड़ी लगी मेज के पीछे
कुर्सी पर बैठ जाते है
किताब को मेज पर रख कर मस्तक नवाते है
घुटने मोड़ते है पैर ऊपर उठाते है —
किताब खोलने से पहले
मेरी ओर देख कर मुस्कराते है

'जीजा जी आज गंगा-स्नान में खूब आनन्द आया
पैदल गये। पैदल आये। रास्ते में
लगभग पाव भर आटा चींटियों को खिलाया

'आपने भी नेक काम करने को कहा था
गंगा-तट पर पुरोहित ने भी कहा—जितना आटा
चींटियों को खिलाओगे
उससे दस गुना सोना,
अगले जन्म में पाओगे।

'जीजा जी, जब दूसरे जन्म में आत्मा
नया चोला धारण करती है
तो स्वर्ग में कौन-सी आत्मा जाती है ?'

मामा हठात पढ़ते-पढ़ते मेरी ओर सिर उठा कर
सवाल करते हैं।

'मैं तो नहीं जानता निन्नी,
शायद वही जाती होगी
जो जन्म-मरण से ऊपर उठ कर
मोक्ष पाती होगी !'

'गंगा - तट का पुरोहित कहता था जीजा जी,
कुम्भ के अवसर पर जो भक्त गगा में
स्नान करता है
मरने पर सीधा स्वर्ग जाता है।'

मैं मुस्कराता हूँ — 'तभी तो निन्नी,
हर पर्व पर, हर कुम्भ पर
लाखों-लाख श्रद्धालु गंगा में स्नान करते हैं
गंगा पतित - पावनी जो ठहरी
सारे पाप - धो देने वाली जो ठहरी।'

'मैं तो महाकुम्भ पर स्नान कर आया हूँ जीजा जी,'
निन्नी मामा कहते हैं, 'आप क्या सोचते हैं
मर कर मेरी आत्मा —
दूसरा चोला धारण करेगी
या स्वर्ग जायगी ?'

मैं चुपचाप निन्नी मामा की ओर देखता हूँ
माँ कहा करती थी—'बेटे, स्वर्ग-नरक किसने देखा है
इसी दुनिया में स्वर्ग है, इसी में नरक
आदमी साध ले वृत्तियों को तो गरीबी में भी
स्वर्ग बसा सकता है।
खुला छोड़ दे तो धन-वैभव में रहता हुआ
नरक की यातना पा सकता है।।'

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार
इन पर अधिकार पाना सरल तो है नहीं
तो भी माँ की बातों में पूरा न सही
आधा सच तो है ही।

आदमी का आदर्श—
आत्मान्वेषण से दूसरों के साथ मिल कर
संघ-बद्ध हो कर

अपने को, समाज को, व्यवस्था को साध कर
इस धरती पर
स्वर्ग बसाना होना चाहिए।

किसी अकेले आदमी का स्वर्ग क्या माने रखता है ?

निन्नी मामा बदस्तूर मेरी ओर देख रहे हैं—
मेरे उत्तर की प्रतीक्षा में

मैं हँसता हूँ—
'निन्नी तुम ज़रूर स्वर्ग जाओगे !'

मामा प्रसन्न हो जाते है।
'जीजा जी, महाकुम्भ ही नहीं
तीन-तीन कुम्भों पर मैंने स्नान किया है
घुटनों तक गगा में खड़े हो कर
सूर्य देवता को अर्घ्य दिया है
न जाने कितने माघ-मेलों पर
पूरा-पूरा महीना
तीन-तीन मील पैदल चल कर
गगा मे डुबकी लगायी है।
मथुरा-वृन्दावन की यात्रा की है। गोकुल मे
गोवर्द्धन की सोलह मील लम्बी परिक्रमा की है
(भगवान कृष्ण ने जिसे छिंगुली पर उठाया था
इन्द्र के कोप से गोकुल वासियों को बचाया था)
सोमनाथ के दर्शन पा चुका हूँ
तिरुपति के चरणों में शीश नवा चुका हूँ
इन सभी का फल स्वर्ग प्राप्ति है जीजा जी
तब मुझे क्यों नहीं मिलेगा ?'

मामा की आँखों में कुछ अजीव-सी चमक आ जाती है
मुख प्रसन्नता और ओज से दमकने लगता है।

'स्वर्ग तुम्हें जरूर मिलेगा निन्नी,'
मैं कहता हूँ, 'हमारे यहाँ स्वर्ग-प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं
कुछ धर्म-ग्रन्थों का नित्य-नियम से पाठ,
कुछ पवित्र नदियों में विशेष पर्वों पर स्नान,
कुछ तीर्थ-स्थलों की यात्रा—
तुम तो निन्नी सब कर चुके हो
स्वर्ग तुम्हें नहीं मिलेगा तो क्या मुझे मिलेगा !'

मामा आह्लादित हो उठते हैं।
आह्लादित और सन्तुष्ट।
और पुनः पुस्तक पर सिर झुका लेते हैं।

लेकिन दूसरे ही क्षण मामा फिर सिर उठाते हैं
मेरी ओर दया-भाव से देखते हैं—
'जीजा जी आपसे वृन्दावन चलने को कहा था
वस का ड्राइवर मेरा मरीज था
जाने कितने इन्जेक्शन मुफ्त लगाये हैं उसके
किराया नहीं लगता।
सोमनाथ के दर्शनों पर चलने को जोर दिया था।
बम्बई से पुन्नी साथ गया था।
आप बहुत व्यस्त रहते हैं
पर कुम्भ या मौनी अमावस्या पर तो
गंगा में स्नान कर ही सकते हैं।'

मैं हँसता हूँ—
'निन्नी मुझे स्वर्ग-प्राप्ति की कोई आकांक्षा नहीं

एक तुम्हीं ने तो कुम्भ-स्नान नहीं किया
ये लाखों गरीबों का शोषण करने वाले पूँजीपति,
ये तस्कर,
स्मगलर,
डाकू, लुटेरे, हत्यारे,
जनता को उल्लू बनाने और
दसियों कुकर्मों से सत्ता हथियाने वाले ठग नेता
और इन सभी का शिकार —
अपने अनकिये गुनाह गंगा में बहाने वाले
अथवा दूसरे जन्म में स्वर्ग पाने की इच्छा से
मीलों पैदल चल कर गंगा तट पर आने वाले
लाखों-लाख निरीह गरीब किसान-मजदूर
ये सभी तो कुम्भों पर गंगा में नहाते हैं
ये सभी तो स्वर्ग में जायेंगे।

तब यही दुनिया क्या बुरी है ?
बसाया जा सके
तो मैं यहीं स्वर्ग बसाना चाहूँगा।
असफलता चाहे हाथ लगे
आदर्श तो यही बनाना चाहूँगा।'

मामा मेरी ओर से निराश हो कर सिर झुका लेते हैं
लेकिन वे देर तक ग्रन्थ में ध्यान नहीं ज़मा पाते।
खट से उसे बन्द करते हैं
उठ कर रैक में यथास्थान रखते हैं,
अन्यमनस्कता से दोनों हाथ जोड़
मस्तक को छुआते हैं
और खट-खट स्टडी से बाहर निकल जाते हैं।

११-११-८६